“MAA” OMWATI COLLEGE OF EDUCATION HASSANPUR (PALWAL)

AFFILIATED CRS UNIVERSITY, JIND

B.ED – 1ST YEAR (2021-22)

NOTES PAPER- IV & V

PEDAGOGY OF MATHEMATICS

MAA OMWATI EDUCATION TRUST

DELHI

E-mail: moce.principal@maaomwati.com

गणित का अर्थ
(Meaning of Mathematics)

गणित शब्द को कई प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। आक्सफोर्ड शब्दकोष (Oxfo Dictionary) के अनुसार, "गणित मापन, मात्रा तथा परिणाम का विज्ञान है।" ("Mathematics is t science of measurment, quantity and magnitude.")

हिन्दी में इसे गणित कहते हैं जिसका अर्थ है—"गणना का विज्ञान" (The Science of Calculatio

लॉक (Locke) के अनुसार—गणित मन में तर्क की आदत को विकसित करने का द्वार है।

एक व्यक्ति अपनी खोज तर्कानुसार करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है। बैनजेमिन पाइरस (Banjamin Peirce) ने भी निम्न बात पर बल देते हुए कहा है—"गणित एक ऐसा विज्ञान है जिससे आवश्यक निष्क निकाले जाते हैं।" इस प्रकार गणित एक ऐसी विधि या कार्य विधि (procedure) है जिसके आधार पर ज्ञा का उचित खोजों द्वारा पता लगाया जाता है।

प्रो. वोस (Prof. Voss) के अनुसार—"हमारी पूर्ण सभ्यता जो प्रकृति के उपयोग तथा बौद्धिक गहराइ पर निर्भर करती है इसकी वास्तविक बुनियाद गणितीय विज्ञान है।" ("Our entire Civilizatio depending upon the intellectual penetration and utilization of nature has its real foundation in the mathematical sciences.")

विज्ञान तथा प्रौद्योगिक युग में वस्तुओं का वितरण जो विज्ञान की तकनीकी जानकारी पर निर्भर करता है वह गणित सम्बन्धी ज्ञान के प्रयोग से पूर्णता को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त पास्कल (Pascal) जो एक विख्यात गणितकार थे, उन्होंने भी निम्न विचार व्यक्त किए हैं—

"गणितकार ठीक प्रकार से तर्क करते हैं, परंतु यह तब सम्भव है जब परिभाषाओं और सिद्धांतों के रूप में उन्हें प्रत्येक वस्तु की व्याख्या की गई हो।" (The Mathematicians reason correctly but only when everything has been explained to them in terms of definitions and principles.")

Scanned with CamScanner

अतः हम कह सकते हैं कि गणित एक ऐसा यंत्र है जो किसी व्यक्ति को निष्कर्ष निकालने तथा परिणामों और खोजों को तर्कसंगत रूप से व्याख्या करने में सहायता करता है।

इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने भी निम्न मत व्यक्त किया है–

गणित को इस रूप में देखना चाहिए कि वह एक वाहन है जिसके माध्यम द्वारा बच्चे को सोचना, समझना, तर्कशील विश्लेषण करना स्पष्ट किया जाता है। ये अपने आप में विशिष्ट विषय है तथा किसी भी अन्य विषय का सहगामी (Concomitant) हो सकता है जोकि विश्लेषण तथा तर्क विद्या पर बल देता है।

(Mathematics should be visualized as the vehicle to train a child to think, reason, analyse and articulate logically. A part from being a specific subject, it should be treated as a concomitant to any subject, involving analysis and reasoning.)

अंत में हम कह सकते हैं कि गणित विद्या ही मानव ज्ञान का समूचा आधार है, गणित विद्या के बिना मानव ज्ञान अधूरा है। गणित ही संस्कृति का दर्पण है।

गणित शिक्षण का अर्थ
(Meaning of Teaching of Mathematics)

गणित एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। अतः इसकी शिक्षा का आदान-प्रदान करने से पूर्व यह जानना आवश्यक व महत्त्वपूर्ण है कि "गणित क्या है?" "इसकी शिक्षा क्यों दी जाये?" सामान्यतः गणित की अनेक परिभाषाएं हैं। उदाहरण के लिए, कोई गणित को गणनाओं का विज्ञान कहता है, कोई संख्या तथा स्थान का विज्ञान कहता है तो कोई मापन (माप-तोल), मात्रा और दिशा (आकार प्रकार) के रूप में स्पष्ट करता है। वास्तव में गणित का शाब्दिक अर्थ होता है–"वह शास्त्र जिसमें गणनाओं की प्रधानता हो।"

जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के औजार हमें किसी भी प्रक्रिया को पूरा करने में मदद करते हैं, उसी रूप में गणित की तुलना ऐसे भरे हुए औजार बॉक्स (Tool Box) से की जा सकती है जिसमें मापने, तोलने, गिनने, आंकने आदि क्रियाओं को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने के लिए ऐसे-ऐसे उपयुक्त और सूक्ष्म औजार भरे पड़े हैं जिनकी सहायता से स्थान, परिणाम, दिशा आदि से सम्बन्धित प्रकृति में निहित सभी प्रकार के रहस्यों को भली भाँति समझा जा सकता है। इस प्रकार गणित के सम्बन्ध में दी गई मान्यताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि गणित–"अंक, अक्षर, चिह्न आदि संक्षिप्त संकेतों का वह विज्ञान है जिसकी सहायता से परिणाम, दिशा तथा स्थान का बोध होता है।"

परिभाषाएं (Definitions) :

1. लॉक के अनुसार, "गणित वह मार्ग है जिसके द्वारा बच्चों के मन तथा मस्तिष्क में तर्क करने की आदत स्थापित होती है।"

("Mathematics is a way to settle in the mind of children a habit of reasoning.")

2. **बेकन** के अनुसार, "गणित सभी विज्ञानों का सिंह द्वार और कुंजी है।" ("Mathematics is the gate and key of the science.")

3. **ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी** के अनुसार, "गणित मापन, मात्रा तथा परिमाण का विज्ञान है।" ("Mathematics is a science of measurement, quantity and magnitude.")

अन्त में हम कह सकते हैं कि गणित एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम द्वारा बच्चों को सोचना, समझना, तर्कशील विश्लेषण सीखाया जाता है अर्थात् गणित ही मानव जीवन का सच्चा आधार है, गणित ज्ञान के बिना मानव ज्ञान अधूरा है।

गणित शिक्षण का कार्यक्षेत्र
(Scope of Teaching Mathematics)

आज के वर्तमान विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी युग में गणित एक धुरी की स्थिति में है। यह गणित संबंधी ज्ञान का ही परिणाम है कि मनुष्य ने अंतरिक्ष में पैर रखा है। उचित गणित सम्बन्धी ज्ञान के बिना कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। किसी न किसी प्रकार से व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन गणित ज्ञान से जुड़ा हुआ

Scanned with CamScanner

है। लगभग प्रत्येक कार्य, धंधे तथा औद्योगिक कार्य गणित के ज्ञान पर निर्भर करते हैं। विज्ञान, वाणिज्य (Commerce), यंत्र कला (Engineering) तथा कृषि में गणित के बिना विकास संभव नहीं, चाहे एक साधारण दुकानदार हो, तकनीकी कार्यकर्ता हो जैसे एक कारीगर, दर्जी, खोजकर्ता, शिल्पकार, योजनकर्ता, उद्योगपति या बैंक कर्मचारी इन सबको गणित के ज्ञान के बिना सफलता एवं प्रगति नहीं प्राप्त हो सकती।

नेपोलियन (Napolean) ने भी ठीक कहा है–

"राज्य की समृद्धि (prosperity) तथा गणित की प्रगति एवं विकास यह दोनों आपस में संबंधित है।"("The progress and the improvement of Mathematics are linked to the prosperity of the state.")

सभी प्रकार के अनुसंधान तथा आविष्कार गणित के ज्ञान से संबंधित हैं। उदाहरणार्थ घड़ी तथा दूरबीन का आविष्कार करने वाला महान् गणितकार गैलिलिओ (Galileo)। न्यूटन जो गणित का राजा था, उसने गुरुत्वाकर्षण के नियम का प्रतिपादन किया था।

रोजर बेकन (Roger Bacon) ने सत्य ही कहा है–"गणित सब विज्ञानों का द्वार तथा कुंजी है।" ("Mathematics is the gate and key of all sciences.")

वैज्ञानिकों के पास गणित का ही ज्ञान है, जो वस्तुओं की मात्राओं का मापन करना है। वास्तव में गणित वैज्ञानिकों तथा अनुसंधानकर्ताओं के हाथ में व्याख्या करने का एक साधन है। सब प्रकार के अनुसंधान, गणनाएं, व्याख्याएं तथा परिणामों को प्रमाणित करने की विधि गणित ज्ञान का व्यावहारिक पक्ष है।

कॉमटे (Comte) ने भी सुझाव दिया है– "सब प्रकार की वैज्ञानिक शिक्षा जो गणित से आरंभ नहीं होती वह अवश्य ही बुनियादी तौर से दोषपूर्ण है।"

("All scientific education which does not commence with mathematics is necessarily defective at its foundation.")

हागबैन (Hogben) ने भी कहा है–"गणित सभ्यता का दर्पण है।"

("Mathematics is the mirror of civilization.")

सभ्यता की प्रगति गणित के ज्ञान तथा प्रयोग के कारण से है। मनुष्य गणित के ज्ञान के बिना दूसरों के साथ स्पर्धा नहीं कर सकता। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने भी निम्न बात पर बल दिया है–

"स्कूलों में कम्प्यूटर के प्रवेश से शैक्षिक गणना तथा कारण प्रभाव (cause effect) सम्बन्ध को समझकर सीखने की प्रक्रिया तथा बदलने योग्य वस्तुओं के आपसी सम्बन्ध के कारण गणित शिक्षण को पुनः व्यवस्थित करके इसे वर्तमान तकनीकी के रूप में स्वीकार करना है।"

Scanned with CamScanner

उद्देश्य और प्राप्य उद्देश्यों में संबंध
(Relationship between Aims and Objectives)

अधिकतर उद्देश्य (Aims) और प्राप्य उद्देश्य (Objectives) दोनों का एक ही अर्थ लगा लिया जाता है। अत: फैले हुए भ्रम का निवारण करने के लिए यह आवश्यक है कि इन दोनों के अंतर और संबंध को स्पष्ट रूप से समझा जाए। विद्यालय में जितने भी विषय पढ़ाए जाते हैं, उन्हें पाठ्यक्रम में रखने का कुछ-न-कुछ ध्येय अवश्य होता है और इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रत्येक विषय के अपने-अपने उद्देश्य होते हैं। इन्हीं लक्ष्य और व्यापक उद्देश्यों (Goal or Broad Aims) को हम संक्षेप में उद्देश्य (Aim) कह देते हैं। आगे जब हम किसी भी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं तो उसके लिए जिन छोटी-छोटी बातों को ध्यान में रखना होता है, उन्हें इस उद्देश्य (Aims) के प्राप्य उद्देश्य (Objectives) कहते हैं। इस तरह से किसी एक विशेष उद्देश्य (Aim) के अंतर्गत कई प्राप्य उद्देश्य (Objectives) आ सकते हैं। इस तरह प्राप्य उद्देश्य गणित के व्यापक उद्देश्यों पर ही आधारित होते हैं तथा गणित के पठन-पाठन को अधिक उपयोगी बनाकर विद्यार्थियों के व्यवहारों में उपयुक्त परिवर्तन (Appropriate behavioural changes) लाने में सहायता पहुँचाते हैं। नीचे दिए हुए वर्णन से उद्देश्य और प्राप्य उद्देश्यों का अंतर और भी अधिक स्पष्ट हो सकता है—

उद्देश्य (Aims)	प्राप्य उद्देश्य (Objectives)
1. उद्देश्य का क्षेत्र असीमित होता है और इसकी प्राप्ति के लिए संपूर्ण स्कूल, समाज तथा राष्ट्र उत्तरदायी होता है।	प्राप्य उद्देश्य किसी विशेष उद्देश्य की छोटी-छोटी शाखाएँ होती हैं तथा इनका क्षेत्र सीमित होता है। अधिकतर इनकी पूर्ति का उत्तरदायित्व अध्यापक के कंधों पर ही डाला जाता है।
2. उद्देश्य अनिश्चित और अस्पष्ट होते हैं।	विभिन्न विषयों और उपविषयों के लिए प्राप्य उद्देश्य प्राय: स्पष्ट रूप से निश्चित होते हैं।
3. उद्देश्य एक तरह के आदर्श (Ideals) ही हैं जिन्हें पूर्ण रूप से प्राप्त करना असंभव सा ही होता है।	प्राप्य उद्देश्य जैसा कि नाम से ही विदित होता है, अनुकूल प्रयास करने पर सही अर्थों में प्राप्त किए जा सकते हैं।
4. उद्देश्यों की प्राप्ति में समय लगता है। इसलिए इनकी जाँच लंबी अवधि के बाद जब बालक स्कूल में अपनी पढ़ाई समाप्त कर लेता है तब की जाती है।	प्राप्य उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिक समय नहीं लगता। ये थोड़े समय में प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी पाठ को पढ़ाने के साथ-साथ संबंधित प्राप्य उद्देश्यों की जाँच भी जारी रह सकती है।

इस तरह हम देखते हैं कि अध्यापक को अपने विद्यार्थियों के व्यवहार में अनुकूल परिवर्तन करने हेतु गणित के उद्देश्यों को छोटे-छोटे प्राप्य उद्देश्यों में विभाजित कर लेना आवश्यक होता है। जब कक्षा में वह किसी एक उपविषय (Topic) का ज्ञान कराता है तो उसके सामने लंबे-चौड़े आदर्श (Aims) नहीं होते, परंतु प्राप्त हो सकने योग्य कुछ एक-दो प्राप्य उद्देश्य ही होते हैं। इस तरह से उसके प्रयास को एक निश्चित दिशा और लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

Scanned with CamScanner

माध्यमिक विद्यालय स्तर पर गणित शिक्षण के प्राप्य उद्देश्य
(Objectives of Teaching Mathematics at the Secondary School Stage)

माध्यमिक विद्यालय स्तर पर गणित शिक्षण के प्राप्य उद्देश्यों की व्याख्या करने के दृष्टिकोण से सुविधा हेतु निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

1. ज्ञानात्मक प्राप्य उद्देश्य (Knowledge Objectives)
2. प्रयोगात्मक प्राप्य उद्देश्य (Application Objectives)
3. दक्षता संबंधी प्राप्य उद्देश्य (Skill Objectives)
4. दृष्टिकोण संबंधी प्राप्य उद्देश्य (Attitude Objectives)
5. अनुभूति एवं सराहनात्मक प्राप्य उद्देश्य (Appreciation Objectives)

1. ज्ञानात्मक प्राप्य उद्देश्य

(*i*) गणित की भाषा—संकेत संख्याओं, आकृतियों आदि को भलीभाँति पहचानना तथा जानना।

(*ii*) दिए गए तथ्यों का अर्थ समझना।

(*iii*) विभिन्न परिभाषाओं, सिद्धांतों आदि का ज्ञान तथा उनके पारस्परिक भेद को समझना।

(*iv*) विभिन्न प्रत्ययों (Concepts) जैसे (number concepts, concepts of size and shape, concept of average) इत्यादि का स्पष्ट ज्ञान।

(*v*) गणित संबंधी विभिन्न क्रियाओं एवं विधियों का पूर्ण ज्ञान।

(*vi*) गणित के ज्ञान का दैनिक जीवन में क्या उपयोग हो सकता है, उसका वर्णन करना।

(*vii*) गणित के विकास की कहानी तथा गणितज्ञों की जीवनी से परिचित होना।

2. प्रयोगात्मक प्राप्य उद्देश्य

(*i*) समस्या का अच्छी तरह मनन करके उसे गणित की विभिन्न क्रियाओं और सिद्धांतों की सहायता से सुगमतापूर्वक हल कर सकना।

(*ii*) दैनिक जीवन की समस्याओं को हल करने में गणित के ज्ञान का प्रयोग कर सकना।

(*iii*) गणित की भाषा का प्रयोग करके विचारों को स्पष्ट एवं यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर सकना।

(*iv*) दिए हुए आँकड़ों (Data) को सुव्यवस्थित करना और उनसे परिणाम निकालना।

(*v*) स्वयं ही अपनी मानसिक शक्तियों का सहारा लेकर गणितीय तथ्यों और विभिन्न उदाहरणों में समानता का निरीक्षण करके उचित निष्कर्ष पर पहुँचना तथा सिद्धांतों का निर्माण करना।

3. दक्षता संबंधी प्राप्य उद्देश्य

(*i*) समस्याओं तथा आँकड़ों को गणित की भाषा—सूत्र, संकेत, आकृति आदि में प्रकट कर सकना।

(*ii*) स्वच्छता, शुद्धता और शीघ्रता से मौखिक और लिखित गणित संबंधी सभी गणनाएँ तथा क्रियाएँ कर सकना।

(*iii*) रेखागणित संबंधी विभिन्न आकृतियों को स्वच्छता, शुद्धता और शीघ्रतापूर्वक खींच सकने और खींची गई आकृतियों की स्पष्ट व्याख्या करके निष्कर्ष निकाल सकने में समर्थ होना।

(*iv*) जाँच-पड़ताल, मापन और तौल (Surveying, measuring and weighing) संबंधी आवश्यक योग्यता एवं कुशलता का विकास।

Scanned with CamScanner

(v) गणना और गणित संबंधी अन्य प्रक्रियाओं को करने के लिए विभिन्न तालिकाओं, यंत्रों (जैसे Log Tables, Ready Reckoners, Calculation Tables, Slide Rulers आदि) का प्रयोग कर सकने में प्रवीणता उत्पन्न करना।

(vi) तालिकाओं (Tables) तथा लेखा-चित्रों (Graphs) को ठीक प्रकार से पढ़ सकना और उनके निर्माण में कुशलता अर्जित करना।

4. दृष्टिकोण संबंधी प्राप्य उद्देश्य

(i) समस्या की तह तक पहुँचने का प्रयत्न करना।

(ii) कार्य को व्यवस्थित ढंग से विधिपूर्वक करने की आदत डालना।

(iii) एकाग्रचित होकर अपनी मानसिक शक्तियों का पूर्ण उपयोग करने की आदत डालना।

(iv) इकट्ठे किए हुए आँकड़ों अथवा दिए गए तथ्यों पर भलीभाँति मनन करके ही कोई निष्कर्ष निकालना।

(v) किसी भी परिणाम को विभिन्न परिस्थितियों तथा उदाहरणों में प्रयोग करके उसकी सत्यता की जाँच करना।

(vi) किसी भी सिद्धांत, तथ्य अथवा सुनी और पढ़ी हुई बात को बिना तर्क और प्रयोग के स्वीकार न करना।

(vii) दूसरे के विचारों और तर्क-वितर्कों को समझने का प्रयत्न करना।

(viii) अपने विचारों को तर्क के आधार पर निष्पक्ष रूप से स्पष्ट एवं संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना।

(ix) असफलताओं से विचलित न होना तथा प्रत्येक कार्य को पूर्ण आत्म विश्वास और धैर्य के साथ करने का प्रयत्न करना।

(x) कक्षा में गणित के प्रश्न हल करते समय ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नियमितता, ईमानदारी तथा सत्यता आदि के प्रयोग में श्रद्धा रखना।

5. अनुभूति एवं सराहनात्मक प्राप्य उद्देश्य

(i) गणितज्ञों के जीवन में व्याप्त लगन, कर्मठता एवं उनके योगदान की प्रशंसा करना।

(ii) "गणित सभी विज्ञानों का विज्ञान और कलाओं की कला है।" इस बात को समझ सकना।

(iii) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में गणित के योगदान की सराहना करना।

(iv) वर्तमान समाज की वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति में गणित के योगदान को समझना तथा भावी प्रगति के संदर्भ में उसकी प्रशंसा करना।

(v) दिन-प्रतिदिन के कार्यों में तथा समाज में अपने आपको ढालने में गणित द्वारा की जाने वाली सेवा के महत्त्व को समझना।

(vi) गणित का विभिन्न धंधों एवं जीविकाओं का आधार होने के नाते मूल्य समझना।

(vii) गणित का खाली समय में सदुपयोग और मनोरंजन करने के साधन के रूप में प्रशंसा करना।

(viii) गणित की क्रियाओं तथा गणना में शीघ्रता, स्वच्छता एवं शुद्धता का आभास होना।

(ix) गणित के विभिन संबंधों जैसे सुडौलपन, समानता, क्रम और व्यवस्था (Symmetry, Similarity, Order and Arrangement) की जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सौंदर्यात्मक अनुभूति का प्रवेश द्वार होने के नाते सराहना करना।

(x) गणित की भाषा, सूत्र, संकेत, लेखाचित्र, आकृतियों आदि के महत्त्व को समझकर उनकी सराहना करना।

Scanned with CamScanner

इस दृष्टिकोण के अनुसार गणित शिक्षण के सामान्य उद्देश्य तथा लक्ष्य वह विशाल समुद्र है जिसके गर्भ में गणित शिक्षण के प्राप्य उद्देश्य समाए हुए हैं और आगे चलकर अनुदेशनात्मक या शिक्षण अधिगम उद्देश्य इन प्राप्य उद्देश्यों के अंतर्गत ही समाविष्ट हो जाते हैं।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि गणित शिक्षण हेतु एक अध्यापक के सामने पहले तो वह सामान्य उद्देश्य या लक्ष्य होते हैं जिनकी प्राप्ति गणित शिक्षण के मूल्यों से संबंधित रहती है। इसके बाद विद्यालय स्तर विशेष के लिए निर्धारित प्राप्य उद्देश्य (objectives) होते हैं। जिनके द्वारा विद्यार्थी के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाए जाते हैं और जिन्हें ज्ञानात्मक, प्रयोगात्मक, दक्षता, दृष्टिकोण, अनुभूति एवं सराहनात्मक प्राप्य उद्देश्यों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है और इसके पश्चात बारी आती है अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की किसी पाठ या प्रकरण विशेष के अनुदेशन हेतु अध्यापक द्वारा इस प्रकार के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार के उद्देश्य व्यवहार के तीनों पक्षों—ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक से संबंधित होते हैं। इनके विषय पर हम नीचे विस्तार से चर्चा करना चाहेंगे।

Scanned with CamScanner

हुए छह वर्गों में विभाजित किया है। ये वर्ग हैं—ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन। साथ ही उन्होंने हर वर्ग के अधिगम परिणामों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका 3.1 ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों का वर्गीकरण
(Taxonomy of Objectives in the Cognitive Domain)

1. **ज्ञान** (Knowledge) **(सबसे निम्न स्तर)**
   - *(a)* विशिष्टताओं का ज्ञान (Knowledge of Specifics)
     - *(i)* पदों का ज्ञान (Knowledge of Terminology)
     - *(ii)* विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान (Knowledge of specific facts)
   - *(b)* विशिष्ट ज्ञान से संबंध स्थापित करने के उपायों एवं परंपराओं का ज्ञान (Knowledge of ways and means of dealing with specific)
     - *(i)* परंपराओं का ज्ञान (Knowledge of conventions)
     - *(ii)* प्रचलन और तारतम्य का ज्ञान (Knowledge of trends and sequences)
     - *(iii)* वर्गीकरण एवं वर्गों का ज्ञान (Knowledge of classifications and categories)
     - *(iv)* कसौटियों का ज्ञान (Knowledge of criteria)
     - *(v)* विधियों का ज्ञान (Knowledge of methodology)
   - *(c)* ज्ञान के किसी क्षेत्र के सार्वभौमिक और अमूर्त प्रत्ययों का ज्ञान (Knowledge of universals and abstractions in a field)
     - *(i)* प्रनियमों और सामान्यीकरण का ज्ञान (Knowledge of principles and generalizations)

2. **बोध** (Comprehension) **(ज्ञान के बाद दूसरे क्रम का निम्न स्तर)**
   - *(a)* अनुवाद (Translation)
   - *(b)* अर्थापन (Interpretation)
   - *(c)* बहिर्वेशन (Extrapolation)

3. **प्रयोग** (Application) **(तीसरे क्रम का निम्न स्तर)**

4. **विश्लेषण** (Analysis) **(उच्च स्तर)**
   - *(a)* तत्त्वों का विश्लेषण (Analysis of elements)
   - *(b)* संबंधों का विश्लेषण (Analysis of Relationships)
   - *(c)* संगठनात्मक प्रनियमों का विश्लेषण (Analysis of organisational principles)

5. **संश्लेषण** (Synthesis) **(उच्चतर स्तर)**
   - *(a)* एक नवीन संप्रेषण का उत्पादन (Production of unique communication)
   - *(b)* किसी प्रस्तावित कार्यवाही के लिए योजना बनाना (Production of a plan or a proposed set of operations)
   - *(c)* अमूर्त संबंधों के समुच्चय का निर्माण (Derivation of a set of abstract relations)

Scanned with CamScanner

6. मूल्यांकन (Evaluation) (उच्चतम स्तर)

(a) आंतरिक साक्ष्यों के आधार पर मूल्य निर्धारण (Judgement in terms of internal evidence)

(b) बाह्य कसौटियों के आधार पर मूल्य निर्धारण (Judgement in terms of external criteria)

ब्लूम द्वारा प्रस्तुत किए गए ज्ञानात्मक पक्ष के उपरोक्त वर्गीकरण को हम इस प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं :

1. ज्ञान (Knowledge)—इस वर्ग में विद्यार्थियों को पाठ्यवस्तु के विशिष्ट तथ्यों, पदों, परंपराओं, प्रचलनों, वर्गों, कसौटियों, विधियों, प्रनियमों, सामान्यीकरणों, सिद्धांतों एवं संरचनाओं का प्रत्यभिज्ञान (Recognition) और प्रत्यास्मरण (Recall) कराने का प्रयास किया जाता है तथा कक्षा में इसके लिए समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

2. बोध (Comprehension)—ज्ञान वर्ग में जिन तथ्यों, पदों, परंपराओं, वर्गों और प्रनियमों आदि का जिससे विद्यार्थी उस प्राप्त ज्ञान को अपने शब्दों में अनुवाद करके व्यक्त कर सकें और बाह्य-गणना तथा उल्लेख कर सकें। ज्ञान के बिना बोध नहीं हो सकता है। अतः ज्ञान वर्ग इस वर्ग के लिए आवश्यक आधार है।

3. प्रयोग (Application)—किसी भी तथ्य, नियम के सिद्धांत का सामान्यीकरण करने, उनकी कमजोरियों का निदान करने तथा पाठ्यवस्तु का प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उस वस्तु का ज्ञान व बोध होना चाहिए। तब ही विद्यार्थी उचित ढंग से, अपनी योग्यतानुसार व्यक्तिगत परिस्थितियों में उस ज्ञान का प्रयोग कर सकेंगे। अतः ज्ञान व बोध वर्ग इस वर्ग के आधार हैं।

4. विश्लेषण (Analysis)—इस वर्ग में विद्यार्थियों को तथ्यों, नियमों या सिद्धांतों आदि का विश्लेषण, उनके संबंधों का विश्लेषण तथा उनका व्यवस्थित सिद्धांतों के रूप में विश्लेषण करना होता है। सीखी गई वस्तु के तत्त्वों को इस प्रकार अलग-अलग करने और उनका संबंध स्थापित करने के लिए ज्ञान, बोध व प्रयोग के उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है।

5. संश्लेषण (Synthesis)—विद्यार्थी पहले चार वर्गों के उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात ही सीखी गई पाठ्यवस्तु के तथ्यों, नियमों, सिद्धांतों आदि के तत्त्वों को एक नवीन रूप में व्यवस्थित करके एक नया अनोखा संप्रेषण, योजना या प्रारूप तैयार करते हैं।

6. मूल्यांकन (Evaluation)—किसी भी शिक्षण कार्य की सफलता इस बात पर निहित है कि विद्यार्थी यह निर्णय ले सकें कि उन्होंने जो भी अधिगम किया है, वह मूल्य की दृष्टि से उपयोगी है या अनुपयोगी। अतः इस स्तर पर अंतः साक्ष्यों व बाह्य कसौटियों के आधार पर बच्चों में पाठ्यवस्तु के तथ्यों, सिद्धांतों और नियमों आदि के बारे में निर्णय लेने की योग्यता विकसित की जाती है।

इस प्रकार विभिन्न शिक्षण विषयों में निहित तथ्यों, सिद्धांतों आदि की सहायता में ज्ञान से लेकर मूल्यांकन तक के उद्देश्यों की प्राप्ति करके ज्ञानात्मक पक्ष को विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

भावात्मक पक्ष के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण
(Taxonomy of Instructional Objectives in the Affective Domain)

ब्लूम तथा उसके सहयोगियों क्रथवाल और मरिया (Bloom and his associates Krathwohl & Maria, 1964) ने भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों का जो वर्गीकरण निम्न स्तर से उच्च स्तर पर जाते हुए जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह निम्न है—

Scanned with CamScanner

तालिका 3.2 भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों का वर्गीकरण
(Taxonomy of Objectives in Affective Domain)

1. **आग्रहण या ध्यान देना** (Receiving or Attending)—**सबसे निम्न स्तर का उद्देश्य**
   (*a*) अभिज्ञता या चेतना (Awareness)
   (*b*) ग्रहण करने की तत्परता (Willingness to receive)
   (*c*) नियंत्रित या चयनात्मक अवधान (Controlled or selected attention)
2. **अनुक्रिया** (Responding)
   (*a*) अनुक्रिया करने की सम्मति देना (Acquiesence in Responding)
   (*b*) अनुक्रिया करने की तत्परता (Willingness to respond)
   (*c*) अनुक्रिया करने में संतुष्टि (Satisfaction in response)
3. **आकलन** (Valuing)
   (*a*) किसी मूल्य की स्वीकृति (Acceptance of a value)
   (*b*) किसी मूल्य के लिए अधिक लगाव व अभिरुचि (Preference for a value)
   (*c*) प्रतिबद्धता (Commitment)
4. **संगठन** (Organisation)
   (*a*) एक मूल्य प्रणाली को धारण करना (Conceptualisation of a value)
   (*b*) एक मूल्य प्रणाली का संगठन करना (Organisation of a values system)
5. **मूल्य प्रणाली का चरित्रीकरण अथवा विशेषीकरण** (Characterisation by a value or value complex)—**उच्चतम स्तर का उद्देश्य**
   (*a*) सामान्यीकृत समुच्चय (Generalised set)
   (*b*) चरित्रीकरण या विशेषीकरण (Characterisation)

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्लूम और उसके सहयोगियों ने भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है जिनको निम्न ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. आग्रहण या ध्यान देना (Receiving or Attending)— भावात्मक विकास की दृष्टि से सब से पहले मानव मूल्यों की अनुभूति करानी होती है। अनुभूति के लिए किसी-न-किसी प्रकार के उद्दीपन का होना अत्यंत आवश्यक है। इस उद्दीपन के प्रति विद्यार्थी को आवश्यक रूप से आकृष्ट होना चाहिए और उसके प्रति अनुक्रिया करने की इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए। इसलिए इस वर्ग में अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों को प्रस्तुत विषयवस्तु के प्रति पर्याप्त रूप से आकर्षित करना तथा इस प्रकार से अभिप्रेरित करना है कि विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों को भलीभाँति ग्रहण करने के लिए पर्याप्त इच्छा जाग्रत हो जाए। इच्छा जाग्रत होने और ध्यानाकर्षित होने की यह स्थिति विद्यार्थियों में उचित समय तक बनी रहे, इस कार्य हेतु पर्याप्त चेष्टा करना ही अध्यापक का कर्तव्य होता है।

2. अनुक्रिया (Responding)— भावात्मक विकास का दूसरा स्तर विद्यार्थियों की उचित अनुक्रिया से संबंधित है। इस वर्ग के लिए आग्रहण वर्ग एक आधार का काम करता है। विद्यार्थियों में मूल्यों को उचित रूप से ग्रहण करने की इच्छा जब जाग्रत हो जाती है और जब वह शैक्षिक गतिविधियों में सुरुचिपूर्वक भाग लेना प्रारंभ कर देता है तभी उसके द्वारा की हुई अनुक्रियाओं की पहचान हो सकती है। विद्यार्थी अनुक्रिया करने में समर्थ हों, इसके लिए उन्हें अनुक्रिया करने के लिए तैयार किया जाना

Scanned with CamScanner

भावात्मक पक्ष के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण
(Taxonomy of Instructional Objectives in the Affective Domain)

ब्लूम तथा उसके सहयोगियों क्रथवाल और मरिया (Bloom and his associates Krathwohl & Maria, 1964) ने भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों का जो वर्गीकरण निम्न स्तर से उच्च स्तर पर जाते हुए जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह निम्न है—

Scanned with CamScanner

चाहिए, उनमें अनुक्रिया करने की इच्छा जाग्रत करनी चाहिए और वे अनुक्रिया करने में पर्याप्त संतुष्टि का अनुभव करें, इसके लिए आवश्यक प्रयत्न करने चाहिए। इस प्रकार से यह वर्ग विद्यार्थियों में आत्माभिव्यक्ति, आत्म विकास और उससे प्राप्त संतुष्टि को विकसित करने में सहायता करता है।

3. आकलन (Valuing)—इस वर्ग की क्रियाएँ अपने दोनों वर्गों की क्रियाओं व उनके परिणामों पर आधारित है। जब कोई विद्यार्थी किसी वस्तु या विचार के प्रति पर्याप्त रूप से आकर्षित होकर उसके प्रति अपनी अनुक्रिया व्यक्त करता हे तो उसकी यह अनुक्रिया, उस वस्तु या विचार उतने ही मूल्यवान होते हैं जितना कि वह उन्हें अपने प्रयोजन पूर्ति का साधन समझता है। यहाँ उस वस्तु या विचार का सामाजिक मूल्य भी आँका जाता है। इस तरह व्यक्तिगत और सामाजिक—दोनों प्रकार के मूल्यों की प्राप्ति की दृष्टि से उसका संबंधित व्यवहार प्रभावित होता है। इस प्रकार इस स्तर पर विद्यार्थियों में किसी विशेष मूल्य को स्वीकार करने व किसी विशेष मूल्य के प्रति अधिक लगाव या अभिरुचि प्रकट करते हुए उसके पालन के लिए वचनबद्ध होने की योजना को विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

4. संगठन (Organisation)—जैसे-जैसे विद्यार्थी किसी वस्तु या विचार के मूल्य को ध्यान में रखते हुए उसके प्रति अपनी व्यवहार संबंधी अनुक्रियाएँ करना सीखता जाता है, वैसे-वैसे इस दिशा में आगे बढ़ते हुए जब वह कई प्रकार के व्यक्तिगत व सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता है तो कई परिस्थितियों में उसे ऐसा आभास होता है कि ये मूल्य अंतर्विरोधी हैं। उनके इस टकराव को रोकने के लिए तथा इन मूल्यों को भलीभाँति अर्जित करने के लिए मूल्यों के स्वरूप और संप्रत्यय का ज्ञान कराना जरूरी हो जाता है। इस ज्ञान के बाद ही इनका व्यवस्थापन और संगठन करना होता है। इसके लिए एक अध्यापक को विभिन्न मूल्यों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितचिंतन को अच्छी तरह ध्यान में रखकर इस प्रकार उचित समन्वय करना चाहिए कि व्यक्तिगत हितचिंतन होते हुए भी सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति हो सके। इन मूल्यों के आपसी संबंधों को अच्छी प्रकार समझकर उनको एक ऐसी प्रणाली के अंदर गठित करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में एक सशक्त चरित्र उभरकर सामने आ सके। इस प्रकार के स्तर की प्राप्ति इस वर्ग के पहले तीनों वर्गों के उद्देश्यों को प्राप्त होने के बाद ही हो सकती है।

5. मूल्यों का चरित्रीकरण या विशेषीकरण (Characterisation by a value or value complex)—भावात्मक पक्ष के विकास के इस स्तर तक पहुँचने के लिए इसके पहले चारों वर्गों के उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है। यहाँ आकर विद्यार्थी के व्यक्तिगत व सामाजिक मूल्यों के समन्वय से उत्पन्न जिस मूल्य प्रणाली अथवा चरित्र की भूमिका बन चुकी होती है, उसे विशेष रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता है। चरित्र संबंधी यह स्तर व्यक्ति का वह अपेक्षाकृत स्थायी और वैयक्तिक रूप होता है जिसके आधार पर उसके व्यक्तित्व की पहचान होती है। इस प्रकार अपने अंदर विभिन्न मूल्यों को आत्मसात करके वह भावात्मक विकास के उच्च स्तर को प्राप्त करता है। इसीलिए चरित्रीकरण या विशेषीकरण भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों में सर्वोपरि है।

Scanned with CamScanner

गणितीय तर्क वाक्यों की प्रकृति
(The Nature of Mathematics Propositions)

गणितीय तर्क वाक्यों (Mathematical Proposition) को समझाते हुए उनकी प्रकृति बताइये।

उत्तर : गणित एक विदेशी भाषा की भांति है। गणित का प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन में, संसार की विभिन्न गतिविधियों में करते हैं। जिस प्रकार अन्य भाषाओं को समझने के लिए उसके शब्दकोश को समझना जरूरी है, उसी प्रकार गणित को समझने और विचारों को व्यक्त करने के लिए गणित के संकेतों और शब्दों को समझना आवश्यक है। गणितीय तर्क के द्वारा हम अवधारणाओं को गणितीय पदों में व्यक्त कर सकते हैं। इससे हम मूलभूत विचारों से प्रारंभ करके संरचना तैयार करते हैं जिसमें गणित की समझ तथा व्यवस्थित पद होते हैं। इससे कठिन से कठिन समस्या भी सरल प्रतीत होती है।

तर्क वाक्य
(Propositions)

तर्क वाक्य एक गणितीय कथन है जैसे–

Scanned with CamScanner

(i) 3, –4 से बड़ा है।
"3 is greater than 4"
(ii) 7 अभाज्य संख्या है।
"7 is prime number"

एक स्वयंसिद्ध (axiom) एक तर्कवाक्य (Proposition) है जिसे सत्य मान लिया जाता है। पूर्व सूचनाओं के द्वारा, गणितीय तर्क प्रायः तर्कवाक्यों को 'सत्य' या 'असत्य' में वर्गीकृत कर देते है।

कहने का तात्पर्य है कि तर्कवाक्य एक घोषणा है जो 'या तो सत्य हो या असत्य' किंतु दोनों नहीं। उदाहरणार्थ–"आज शुक्रवार है।" यह कथन सत्य या असत्य हो सकता है, किंतु दोनों नहीं। तर्कवाक्य के लिए संक्षिप्त संकेत व्यक्त किया जा सकता है।

माना P तर्क वाक्य है "आज शुक्रवार है।" यदि कथन सत्य है तो P का वास्तविक मूल्यों (Truth Value) सत्य है और यदि कथन असत्य है तो वास्तविक मूल्य असत्य है। किसी तर्क वाक्य में रिक्त स्थानों को भर के लिए एक सामान्य संकेत का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ–माना P(x) "x एक विषय संख्या है। इस तर्क वाक्य में P(x) का मान x पर निर्भर करता है।

निम्न में से कौन-कौन से तर्क वाक्य हैं–

(i) $x = 5$
(ii) सफेद कुत्ता
(iii) कुत्ता भूरा है
(iv) वास्तविक संख्या

यहां हम सामान्य तर्क वाक्यों का प्रयोग करके अर्थपूर्ण गणितीय विचार नहीं बना सकते। अतः तर्क वाक्यों से अन्तःक्रिया करने के लिए एक संक्रिया (Operation) को परिभाषित करना होगा जिसे Negation (असहमति) कहा जाता है। जैसे–

माना P "आज शुक्रवार है।"

तब P का negation (असहमति वाक्य) इस प्रकार लिखा जायेगा।

–P "आज शुक्रवार नहीं है।"

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि P और –P दोनों का वास्तविक मूल्य समान नहीं है इसे अविरोधाभास (Non Contradiction) का नियम कहते हैं।

तर्क वाक्यों पर संक्रिया
(Operations on Propositions)

ये संक्रिया दैनिक बोलचाल में सहज ज्ञान से उत्पन्न हुई है। ये संक्रिया है "और" (and) तथा "या" (or)

(i) (and) "और" को संकेत "$\wedge$"
(ii) "या" (or) को संकेत "V"

द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

तर्क वाक्य "$P \wedge Q$" सत्य है, यदि P और Q दोनों सत्य हैं। तर्क वाक्य "PVQ" सत्य है तो, या तो P सत्य है अथवा Q सत्य है किंतु दोनों सत्य नहीं है।

उदाहरणार्थ

माना "P, $x < 4$" और "Q, $x > 2$"

तब

$P \wedge Q$ तर्क वाक्य है "$x < 4$ और $x > 2$"

और

PVQ तर्क वाक्य है "$x < 4$ या $x > 2$"

इस आधार पर हम तर्कवाक्यों को शब्दों में भी लिख सकते हैं–

Scanned with CamScanner

माना P "मेरे एक बहन है।"
Q "मेरे एक भाई है।"
N "मेरे एक चचेरी बहन है।"
(i) PΛQΛN
(ii) PΛ~Q
(iii) PVQ
(iv) (PVQ)ΛN

तार्किक निहितार्थ (Logical Implication)

तार्किक निहितार्थ, दो तर्क वाक्यों के मध्य संबंध है। तार्किक निहितार्थ मूलरूप से "यदि, तब" वाले कथनों का विचार है। अर्थात् "यदि A सत्य है, तब B भी सत्य है"।

उदाहरणार्थ

माना P "आज शनिवार है।"
Q "यह सप्ताहंत (Weekend) है।"
तब P, Q में निहित है (Pimplies Q) इसे $P \Rightarrow Q$ लिखा जाता है; इसका अर्थ है "यदि यह शनिवार है, तब यह सप्ताहंत है।" इससे हम निश्चित कर सकते हैं कि $P \Rightarrow Q$ सत्य है।
$Q \Rightarrow P$ विपरीत (Converse) है, इसलिए असत्य है।

निम्नलिखित तर्क वाक्यों को शब्दों में लिखो :

माना P, $x_1 = 1$ है और Q, "$X_2 = 1$" तब सत्य कथन बताइये–

1. $P \Rightarrow Q$
2. $Q \Rightarrow P$

यहां संभव है कि $P \Rightarrow Q$ और $Q \Rightarrow P$ दोनों ही सत्य हैं। अतः जब $P \Rightarrow Q$ और $Q \Rightarrow P$ है तो हम $P \Leftrightarrow Q$ लिखते हैं और कहते हैं "P if and only if Q". यह स्थिति सत्य है तो हम कह सकते हैं कि P और Q तुल्य (equivalent) हैं।

निहितार्थ (implication) को तर्क वाक्यों पर संक्रिया (V, Λ) के द्वारा भी लिखा जा सकता है।
निहितार्थ की संकेतात्मक परिभाषा है =

$P \Rightarrow Q = \sim PVQ$

तब देखा जाता है कि

$P \Rightarrow Q = \sim PVQ = QV \sim P = \sim Q \Rightarrow \sim P$

इसलिए $P \Rightarrow Q$ और $Q \sim Q \Rightarrow \sim P$ तुल्य है

या $(P \Rightarrow Q) \Leftrightarrow (\sim Q \Rightarrow \sim P)$

यह तुल्य कथन Contrapositive कहलाते हैं।

[Contrapositive–The inverse of converse of a given proposition]

परिमाणवाचक शब्दों तथा वेन चित्रों का प्रयोग (Use of Quantifiers and Venn Diagram)

☛ परिमाणवाचक शब्दों (Quantifiers) तथा वेन चित्रों का गणित में क्या प्रयोग है?

उत्तर : परिणामवाचक शब्द : विभिन्न तर्क वाक्यों को लिखना संभव है किंतु सभी कथनों को हम तर्कवाक्य के रूप में लिखना चाहे तो ये संभव नहीं है। परिणामवाचक शब्द, तर्क वाक्यों (Propositions) के क्षेत्र का विशिष्टीकरण करते हैं।

Scanned with CamScanner

गणित में वेन चित्रों का प्रयोग
(Use of Venn Diagram in Mathematics)

तार्किक आकृतियाँ
(Reasoning Diagrams)

इसमें आकृतियों द्वारा प्रदर्शित दो या अधिक वस्तुओं के बीच एक विशेष सम्बन्ध स्थापित होता है। दि आधार पर दिए गए प्रश्नों का तार्किक उत्तर देना होता है। आकृतियों द्वारा प्रदर्शित वस्तुएँ व्यक्तिगत या व के समूह श्रेणी आदि के रूप में हो सकती हैं। सम्बन्ध को दर्शाने के लिए प्रश्न से पहले एक दिशा निर्देश होता है। इस दिशा निर्देश में दी गई सूचनाओं को ध्यान से पढ़कर आप उत्तर विकल्प में से अपना सही शीघ्रता से चुन सकते हैं।

आगनात्मक तर्क (Inductive Reasoning) में बौद्धिक योग्यता और तर्क शक्ति को परखने के प्रश्न आकृतियों, डिजाइनों और रेखाचित्रों को रखा जाता है। इसमें प्रायः भाषा व व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान, के अर्थ व प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। यहाँ तार्किक शक्ति, तीव्र सोचने की क्षमता, स्मृति और गई वस्तुओं व रेखाचित्रों में भेद करने की दक्षता की अधिक आवश्यकता होती है।

आगमनात्मक तर्क के द्वारा बच्चों की तार्किक योग्यता, मानसिक क्षमता, स्मृति, वस्तुओं में भेद करने क्षमता को बढ़ाया जाता है। इससे सम्बन्धित प्रश्नों के द्वारा यह देखा जाता है कि छात्र कितनी तीव्रता से सकते हैं।

तार्किक आकृतियों से सम्बन्धित प्रश्नों को हल करने के लिए निम्नांकित संकेत सहायक हो सकते

* ये प्रश्न वर्ग या श्रेणी की अवधारणा पर आधारित होते हैं, जिनमें एक वर्ग (श्रेणी) ऐसी वस्तु का समूह होता है जिनमें कुछ न कुछ साझा होता है।
* विभिन्न श्रेणियाँ अन्य श्रेणियों में सम्मिलित हो सकती हैं या एक श्रेणी में कोई दूसरी श्रेणी सम्मिलित हो सकती है। उदाहरण के लिए पिता (Fathers) पुरुष (Male) के वर्ग में सम्मिलित हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी पुरुष पिता हो सकते हैं। इसे नीचे आकृति द्वारा दर्शाया गया है।

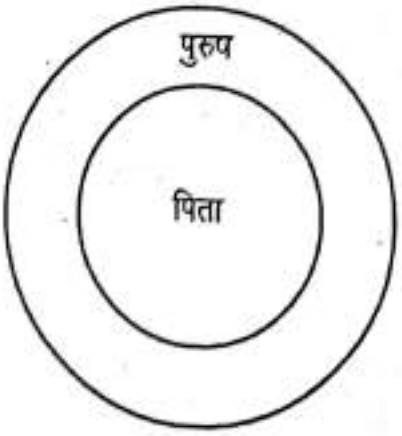

* इसका परिणाम होता है विभिन्न श्रेणियों के बीच एक सम्बन्ध की प्रतिस्थापना, जिसके आधार पर हमें उससे सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर देना होता है।
* एक श्रेणी को वृत्त, वर्ग, त्रिभुज आदि किसी भी रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

आगमनात्मक तर्क में कुछ तर्क दिए होते हैं उनके आधार पर ऐसा तर्क तैयार किया जाता है जो सभी तर्कों को सन्तुष्ट करता है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि आगमनात्मक विधि में विभिन्न उदाहरणों के आधार पर एक नियम का निर्माण किया जाता है।

जैसे एक कथन का तार्किक निष्कर्ष निकालना है।

उदाहरण : कथन : सभी साइकिलें हवाई जहाज हैं।

Scanned with CamScanner

कुछ मोटरकार साइकिल हैं।

यहाँ हम चित्र के माध्यम से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

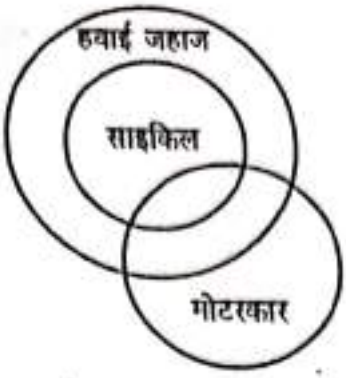

निष्कर्ष : 1. कुछ मोटरकार हवाई जहाज हैं।
2. कुछ हवाई जहाज मोटरकार हैं।

उदाहरण-2 : यदि दो दिए गए आधार वाक्यों में कोई भी एक आधार वाक्य निषेधात्मक हो तो उनके निष्कर्ष भी निषेधात्मक ही होंगे।

जैसे— **कथन :** सभी लड़के छात्र हैं।
कोई छात्र राजा नहीं है।

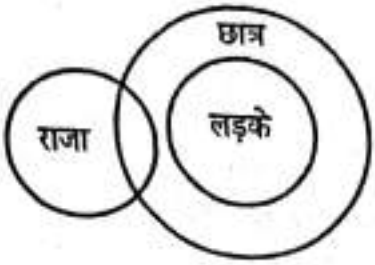

निष्कर्ष : 1. कोई लड़के राजा नहीं हैं।
2. कोई राजा लड़के नहीं है।

उदाहरण-3 : यदि दिए गए दोनों आधार वाक्य सकारात्मक हों तो उनका निष्कर्ष भी सकारात्मक होगा।

जैसे—

कथन : सभी लड़के राजनीतिज्ञ हैं।
सभी मनुष्य लड़के हैं।

निष्कर्ष : सभी मनुष्य राजनीतिज्ञ हैं।

किसी भी कथन का तार्किक निष्कर्ष निम्नलिखित दो विधियों द्वारा निकाला जा सकता है :

1. अरस्तू के तार्किक नियम द्वारा

Scanned with CamScanner

☛ गणित की संरचना में स्वयंसिद्ध, परिभाषाएं तथा प्रमेय किस प्रकार सहयोगी हैं?

उत्तर : गणित का विकास और अनुप्रयोग विश्व के सभी स्थानों पर होता रहा। परंतु यह बड़े अव्यवस्थित प्रकार से हो रहा था। प्राचीन विश्व में, गणित के विकास का ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को या तो मौखिक रूप से या ताड़ के वृक्ष की पत्तियों पर लिखे संदेशों या कुछ अन्य विधियों द्वारा दिया जाता रहा। साथ ही कुछ सभ्यताओं जैसे कि बेबीलोनिया में, ज्यामिति एक अत्यधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण वाले विषय तक सीमित रही तथा ऐसा ही भारत और रोम में रहा। मिश्रवासियों द्वारा विकसित की गई ज्यामिति में मुख्यतः परिणामों के कथन ही निहित थे।

इसमें अन्य विधियों के कोई व्यापक नियम नहीं दिए गये। वस्तुतः बेबीलोन और मिस्रवासियों दोनों ने ज्यामिति का उपयोग अधिकांशतः व्यावहारिक कार्यों के लिए ही किया था तथा उसको एक क्रमबद्ध विज्ञ के रूप में विकसित करने के लिए बहुत ही कम काम किया। परंतु यूनान जैसी सभ्यताओं में इस तर्क पर दिया जाता था कि कुछ रचनाएं किस प्रकार हो जाती हैं। यूनानियों की अभिरुचि उन कथनों, जिनको उन स्थापित किया था, कि सत्यता युक्तियुक्त तर्क (Dueductive Reasoning) का उपयोग करके जांचें थी।

यूक्लिड के समय में यूनानी गणितज्ञों ने ज्यामिति को उस विश्व का एक सिद्धांतीय प्रतिमान (Mo सोचा जिसमें वे रहते हैं। विन्दू (Point), रेखा (line), तल (Plane) या पृष्ठ (Surface) इत्यादि अवधारणाएं अपने आसपास की वस्तुओं से स्थापित की गईं। आकाश (Space) और उनके आसपास के के अध्ययनों के आधार पर एक ठोस वस्तु की सिद्धांतीय ज्यामितीय अवधारणा विकसित की गई। एक का आकार होता है, माप और स्थिति होती है तथा उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा है। इसकी परिसीमाएं पृष्ठ (Surface) कहलाती हैं। ये आकाश के एक भाग को दूसरे भाग से पृथक् है और इनकी कोई मोटाई नहीं होती। पृष्ठों की परिसीमाएं वक्र (curves) या सीधी रेखाएं होती रेखाओं के सिरे विन्दु (Points) होते हैं।

परिभाषाएं (Definitions) : ठोसों से विन्दुओं (ठोस-पृष्ठ-रेखाएं-बिन्दू) तक के तीन च अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि प्रत्येक चरण में एक विस्तार अर्थात् विमा (Dimension) कम है। जैसे—ठोस की तीन विमाएं होती हैं, एक पृष्ठ की दो विमाएं, एक रेखा की एक विमा होती है ने इन कथनों को संक्षिप्त रूप से परिभाषाओं के रूप में प्रस्तुत किया।

उन्होंने अपने इस रहस्योद्घाटनों का प्रारम्भ "एलीमेंट्स" की पुस्तक 1 में 23 परिभाषाएं (tions) देकर किया। इनमें से कुछ परिभाषाएं निम्न हैं—

1. एक बिन्दु (Point) वह है जिसका कोई भाग नहीं होता।
2. एक रेखा (Line) चौड़ाई रहित लम्बाई होती है।
3. एक रेखा के सिरे बिन्दु होते हैं।
4. एक सीधी रेखा ऐसी रेखा है जो स्वयं पर बिन्दुओं के साथ सपाट रूप से स्थित ह
5. एक पृष्ठ (Surface) वह है जिसकी केवल लम्बाई और चौड़ाई होती है।
6. पृष्ठ के किनारे (Edge) रेखाएं होती हैं।
7. एक समतल पृष्ठ (Plane Surface) ऐसा पृष्ठ है जो स्वयं पर सीधी रेखाओं के रूप से स्थित होता है।

Scanned with CamScanner

उपरोक्त परिभाषाओं से हम पाते हैं कि कुछ पदों जैसे भाग, चौड़ाई, लम्बाई, सपाट रूप से, इत्यादि को स्पष्ट रूप से आगे और अधिक समझाने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ यूक्लिड द्वारा दी गई बिन्दु की परिभाषा में 'एक भाग' को परिभाषित करने की आवश्यकता है। मान लीजिए कि हम परिभाषित करें कि एक भाग वह है जो 'क्षेत्र' घेरता है, तो हमें पुनः 'क्षेत्र' को परिभाषित करने की आवश्यकता होगी। अतः एक वस्तु को परिभाषित करने के लिए कई वस्तुओं को परिभाषित करने की आवश्यकता होती है और बिना किसी अंत के परिभाषाओं की एक लम्बी शृंखला प्राप्त हो सकती है। इन्हीं कारण गणितज्ञों ने कुछ ज्यामितीय पदों को अपरिभाषित (Underfined) मान लिया। इस विधि से, हम एक बिन्दु की ज्यामितीय संकल्पना का ऊपर दी हुई 'परिभाषा' की तुलना में एक बेहतर अंतर्ज्ञानात्मक आभास प्राप्त करेंगे। इसलिए हम बिन्दु को एक सूक्ष्म बिंदी (dot) से निरूपित करते हैं, परंतु इस सूक्ष्म बिंदी की कुछ न कुछ विमा (माप/Dimensions) अवश्य होती है।

इसी प्रकार की समस्या उपरोक्त परिभाषा 2 में भी आती है। इसमें चौड़ाई और लम्बाई का संदर्भ आता है और इनमें से किसी को भी पहले परिभाषित नहीं किया गया है। इसी कारण, किसी भी विषय के अध्ययन के लिए कुछ पदों को अपरिभाषित रखा गया है। इसलिए ज्यामिति में हम बिन्दु, रेखा और तल (यूक्लिड के शब्दों में समतल पृष्ठ) को अपरिभाषित शब्दों के रूप में मानकर चलते हैं। केवल यह बात अवश्य है कि हम इन्हें अंतर्ज्ञानात्मक रूप से निरूपित कर सकते हैं अथवा वस्तुओं (भौतिक प्रतिमानों Physical Model) की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं।

अभिगृहीत अथवा स्वयंसिद्ध (Axioms) : यूक्लिड ने परिभाषाएं देते हुए कुछ गुणों को बिना सिद्ध किए सत्य कथन मानने की कल्पना की। ये कथन वास्तव में "स्पष्टतः सर्वव्यापी सत्य" थे। उन्होंने इनको दो वर्गों में विभाजित किया। ये वर्ग थे–

1. अभिगृहीत (Axioms)
2. अभिधारणाएं (Postulates)

"अभिधारणा" शब्द का प्रयोग उन कल्पनाओं के लिए किया जाता है जो विशिष्ट रूप से ज्यामिति से सम्बन्धित थी।

दूसरी ओर सामान्य अवधारणाएं (जिन्हें प्रायः अभिगृहीत axioms कहा गया) वे कल्पनाएं थीं, जिन्हें निरंतर गणित में प्रयोग किया गया और जिनका केवल ज्यामिति से ही विशेष संबंध नहीं था।

अभिगृहीत वे कथन हैं, जिन्हें आपत्ति बिना सत्य मान लिया गया है।

गणित में हमारे सामने जो कुछ भी आता है, क्या उसे सिद्ध करना आवश्यक है, और यदि नहीं, तो क्यों नहीं? वास्तविकता तो यह है कि गणित का प्रत्येक क्षेत्र कुछ कथनों पर आधारित होता है, "जिन्हें हम सत्य मान लेते हैं और उन्हें सिद्ध नहीं करते। ये "स्वप्रमाणित सत्य" हैं जिन्हें हम बिना उपपत्ति के सत्य मान लेते हैं। इन कथनों को अभिगृहीत (axioms) कहा जाता है।

Note : आजकल अभिगृहीतों और अभिधारणाओं के बीच कोई भेद नहीं रखा जाता है।

उदाहरण के लिए युक्लिड की पहली अभिधारणा है :

"किसी एक बिन्दु से किसी अन्य बिन्दु तक एक सरल रेखा खींची जा सकती है।"

और उनकी तीसरी अभिधारणा है :

"कोई भी केंद्र और कोई भी त्रिज्या लेकर एक वृत्त खींचा जा सकता है।"

ये कथन पूर्णतः सत्य दिखाई पड़ते हैं और यूक्लिड ने इन्हें सत्य मान लिया था। उन्होंने इसे सत्य इसलिए मान लिया था, क्योंकि हम प्रत्येक तथ्य को सिद्ध नहीं कर सकते और हमें कहीं न कहीं से तो प्रारंभ करना ही पड़ता है। इसके लिए हमें कुछ कथनों की आवश्यकता होती है, जिन्हें हम सत्य मान लेते हैं और फिर इन अभिगृहीतों पर आधारित तर्क के नियमों का प्रयोग करके हम अपने ज्ञान का निर्माण कर सकते हैं।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि तब हम उन सभी कथनों को स्वीकार क्यों नहीं कर लेते जो स्व-प्रामाणिक प्रतीत होते हैं। इसके अनेक कारण हैं। प्रायः हमारा अन्तर्ज्ञान गलत सिद्ध हो सकता है; चित्र

Scanned with CamScanner

या प्रतिरूप हमें धोखा दे सकते हैं और फिर हमारे सामने केवल एक ही विकल्प बच जाता है कि दिए
तथ्य को सिद्ध करें। उदाहरण के लिए हममें से अनेक व्यक्ति यह विश्वास करते हैं कि एक संख्या को
संख्या से गुणा करें, तो प्राप्त परिणाम दोनों संख्याओं से बड़ा होगा। परंतु हम जानते हैं कि यह सदैव
नहीं होता है। उदाहरण के लिए, $15 \times 0.3 = 4.5$ है जो कि 15 से कम है।

अपने अंतर्ज्ञान के आधार पर यदि हम वे अभिगृहीत ले जो स्वप्रमाणित दिखाई पड़ते हैं फिर भी
है कि बाद में चलकर हमें पता चल सकता है कि अमुक अभिगृहीत सत्य नहीं है। इस संभावना से
लिए हम निम्नलिखित चरण अपनाते हैं–

(i) अभिगृहीतों (axioms) की संख्या कम से कम रखिए। उदाहरण के लिए, यूक्लिड के
अभिगृहीतों और 5 अभिधारणायों के आधार पर हम सैंकड़ों परिणाम व्युत्पन्न कर सकते हैं।

(ii) सुनिश्चित हो जाइये कि अभिगृहीत संगत (अवरोधी) (Consistent) हैं। हम अभिगृहीत
संग्रह को असंगत (Inconsistent) तब कहते हैं जबकि हम इनका प्रयोग करते हुए, यह सिद्ध कर
इनमें से एक अभिगृहीत सत्य नहीं है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित दो कथन लीजिए। यहां हम यह दि
कि ये कथन असंगत हैं।

कथन I : कोई भी पूर्ण संख्या अपनी परवर्ती संख्या के बराबर नहीं होती है।

कथन II : एक पूर्ण संख्या को शून्य से भाग देने पर एक पूर्ण संख्या प्राप्त होती है।

(शून्य से दिया गया भाग परिभाषित नहीं है, परन्तु एक क्षण के लिए यह मान लीजिए कि ऐसा संभ

कथन 2 से हमें $1/0 = a$ प्राप्त होता है, जहां a एक पूर्ण संख्या है। इससे यह पता चलता है
$= 0$ है। परंतु कथन 1 को जो कहता है कि कोई भी पूर्ण संख्या अपनी परवर्ती (अगली) पूर्व संख्या के
नहीं होती, यह असत्य सिद्ध कर देता है।

(iii) कभी न कभी एक असत्य अभिगृहीत के कारण अंतर्विरोध अवश्य होगा। हम अंतर्विरोध तब
हैं जबकि हमें एक ऐसा कथन प्राप्त होता है, जिससे कि कथन और उसका निषेध (Negation) दो
सत्य हो जाएं। उदाहरण के लिए, ऊपर दिए गए कथन 1 और कथन 2 को पुनः लीजिए।

कथन I से हम यह परिणाम व्युत्पन्न कर सकते हैं कि $2 \neq 1$ है। अब आप $y^2 - y^2$ लीजिए।
गुणनखण्ड हम दो विधियों से कर सकते हैं :

(i) $y^2 - y^2 = y(y - y)$

(ii) $y^2 - y^2 = (y - y)(y + y)$

अतः $y(y - y) = (y - y)(y + y)$ [$(y - y)$ दोनों पक्षों से हटाने

$y = (y + y)$

$y = 2y$

$1 = 2$

अतः कथन $2 \neq 1$ और इसका निषेध $2 = 1$ दोनों ही सत्य हैं। यह एक अंतर्विरोध है। यह अंत
असत्य अभिगृहीत के कारण है, जो यह है कि एक पूर्ण संख्या को 0 से भाग देने पर एक पूर्ण संख्या
होती है।

अतः हम जिन कथनों को, अभिगृहीत मानते हैं, उसके लिए बहुत सोच-विचार और अंतर्दृ
आवश्यकता होती है। इस संबंध में हमें यह अवश्य सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इनमें कोई असंगत
तर्कसंगत अंतर्विरोध न हो, फिर भी, कभी-कभी अभिगृहीतों या अभिधारणाओं के चयन से कुछ नए
का पता लगता है।

प्रमेय
(Theorems)

अभिधारणाओं और अभिगृहीतों का प्रयोग अन्य परिणामों को सिद्ध करने में किया जा सकता है

Scanned with CamScanner

इन परिणामों का प्रयोग करके, निगमनिक तर्कण (deductive reasoning) द्वारा कुछ और परिणामों को सिद्ध किया जा सकता है। जिन कथनों को सिद्ध किया जाता है ये साध्य (Propositions) या प्रमेय (Theorems) कहलाती हैं। यूक्लिड ने अपनी अभिगृहीतों, अभिधारणाओं, परिभाषाओं और पहले सिद्ध की गई प्रमेयों का प्रयोग करके एक तार्किक शृंखला में 465 साध्य निगमित (deduce) किये। अतः "उस गणितीय कथन को, जिसकी सत्यता स्थापित (या सिद्ध) कर दी गई है, प्रमेय कहा जाता है।

गणितीय कथनों का मान्यकरण प्रक्रम : उपपत्ति, प्रत्युदाहरण और कन्जेक्चर
(Validation Process of Mathematical Statement : Proof, Counter, Example, Conjecture)

☛ मान्यकरण (Validation) से आप क्या समझते हैं?

हम गणित के अन्तर्गत वास्तविक जगत से जुड़ी कई समस्याओं को हल करते हैं। जैसे—साधारण ब्याज के प्रश्न संबंधित सूत्र का प्रयोग करके हल किये जाते हैं।

$$\text{ब्याज} = \frac{\text{मूलधन} \times \text{दर} \times \text{समय}}{100}$$

यह सूत्र ब्याज तथा इससे संबंधित अन्य तीन राशियों अर्थात् मूलधन, ब्याज दर और अवधि के बीच एक संबंध को प्रदर्शित करता है। यह सूत्र गणितीय प्रतिरूप या निदर्श (Mathematical Model) का एक उदाहरण है। गणितीय निदर्श (प्रतिरूप) एक गणितीय संबंध होता है जो वास्तविक जीवन से जुड़ी किसी स्थिति की व्याख्या करता है।

गणितीय निदर्शों का प्रयोग वास्तविक जीवन से जुड़ी अनेक स्थितियों का हल ज्ञात करने में किया जाता है, जैसे—

- बड़े शहरों में ट्रैफिक जाम को कम करना।
- वाहनों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करना।
- उपग्रह छोड़ना।

गणितीय निदर्शन (Mathematical Modelling) में हम वास्तविक जीवन से जुड़ी एक समस्या लेते हैं और इसे एक तुल्य गणितीय समस्या के रूप में लिखते हैं। फिर हम गणितीय समस्या का हल करते हैं और इसके हल की व्याख्या वास्तविक जीवन से जुड़ी समस्या के पदों में करते हैं। इसके बाद, हम देखते हैं कि यह हल वास्तविक जीवन से जुड़ी समस्या के संदर्भ में, किस सीमा तक मान्य है। अतः गणितीय निदर्शन में लागू होने वाले चरण निम्नलिखित हैं—

(i) सूत्रण (Formulation)
(ii) हल (Solution)
(iii) निर्वचन (व्याख्या) Interpretation
(iv) मान्यकरण (Validation)

मान्यकरण
(Validation)

वास्तविक जीवन से जुड़ी स्थिति में, हम उस निदर्श को स्वीकार नहीं कर सकते जिससे प्राप्त उत्तर वास्तविकता से मेल नहीं खाता हो। वास्तविकता के विरुद्ध उत्तर की जांच करने और यदि आवश्यक हो तो, गणितीय वर्णन में अपरिवर्तन (modification) करने के इस प्रक्रम को मान्यकरण कहा जाता है।

इसे एक उदाहरण के माध्यम से हम भली-भांति समझा सकते हैं।

उदाहरण : मान लीजिए आपके पास 8 मीटर लम्बा और 5 मीटर चौड़ा एक कमरा है। आप इस कमरे

Scanned with CamScanner

के फर्श पर 40 सेमी. भुजा वाली वर्गाकार टाइलों को लगवाना चाहते हों। इसके लिए कितनी टाइलों की आवश्यकता होगी? एक गणितीय निदर्श बनाकर इसे हल कीजिए।

हल : सूत्रण (Formulation) : इस समस्या को हल करने के लिए, हमें कमरे का क्षेत्रफल और एक टाइल का क्षेत्रफल लेना होता है। टाइल की एक भुजा की लम्बाई 0.4 मीटर है। चूंकि कमरे की लम्बाई 8 मीटर है, इसलिए कमरे की लम्बाई के अनुदिश एक पंक्ति में $8/0.4 = 20$ टाइलें लगाई जा सकती हैं।

पुनः चूंकि कमरे की चौड़ाई 5 मीटर है और $5/0.4 = 12.5$ है। अतः एक स्तंभ में हम 12 टाइलें लगा सकते हैं। अब $12 \times 0.4 = 4.8$ है। इसलिए चौड़ाई के अनुदिश $5 - 4.8 = 0.2$ मीटर स्थान पर टाइलें नहीं लगी होंगी।

इस खाली भाग में साइज के अनुसार टाइलों को काटकर लगाना होगा। टाइल से बिना ढके फर्श की चौड़ाई 0.2 मीटर है, जो टाइल की लम्बाई 0.4 मीटर के आधे के बराबर है। अतः हम एक टाइल को दो बराबर भागों में बांट शेष भाग को ढकने में प्रयोग कर सकते हैं।

गणितीय वर्णन :

आवश्यक टाइलों की कुल संख्या = (लम्बाई के अनुदिश टाइलों की संख्या × चौड़ाई में टाइलों की संख्या) + बिना ढके हुए क्षेत्र पर टाइलों की संख्या .....(1)

हल : जैसा कि ऊपर बताया गया है कि लंबाई के अनुदिश टाइलों की संख्या 20 है और चौड़ाई के अनुदिश टाइलों की संख्या 12 है। अंतिम पंक्ति के लिए, हमें 20 और टाइलों की आवश्यकता होगी।

इन मानों को (1) से प्रतिस्थापित करने पर

$$(20 \times 12) + 20 = 240 + 20 = 260$$

निर्वचन (व्याख्या) (Interpretation) : फर्श पर लगाने के लिए 260 टाइलों की आवश्यकता होगी।

मान्यकरण (Validation) : व्यावहारिक जीवन में आपका मिस्त्री आपसे कुछ और टाइल मांग सकता है; क्योंकि साइज के अनुसार काटते समय कुछ टाइलें टूट-फूट जाती हैं। टाइलों की संख्या आपके मिस्त्री की कार्यकुशलता पर भी निर्भर करती है। परन्तु, इसके लिए समीकरण (1) का अपरिवर्तन (Modification) करने की आवश्यकता नहीं है। इससे हमें एक स्थूल अनुमान (rough estimate) मिल जाता है कि कितनी टाइलों की आवश्यकता होगी।

Scanned with CamScanner

2 गणित का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
[Historical Perspective of Mathematics]

गणित का इतिहास
(History of Mathematics)

☛ गणित के इतिहास को क्रमबद्ध रूप में बताइए।

अथवा

☛ गणित के इतिहास में बेबीलोन, मिस्र तथा यूनान का योगदान समझाइये।

गणित के इतिहास का अध्ययन करने से तात्पर्य गणित में की गई खोजों का मूल जानना, गणित की विधियों की जानकारी प्राप्त करना और गणित के भूतकाल को अंकित करना है।

आधुनिक काल तथा ज्ञान के भंडार का विस्तार होने से पूर्व कुछ ही स्थानों पर गणितीय विकास के उदाहरण प्रकाश में आये। सबसे पुरानी उपलब्ध गणितीय पाठ्यपुस्तक प्लिम्पटॉन (Plimpton) है। यह बेबीलोन का गणित है जो 1900 B.C. में प्राप्त हुआ। रिहिन्द गणितीय पपायरस (मिस्र का गणित 2000-1800 B.C.) में प्राप्त हुआ। ये सभी पाठ्यपुस्तकें पाइथागोरस प्रमेय से सम्बन्धित थीं। पाइथगोरस प्रमेय बेसिक गणित तथा ज्यामिती के बाद सबसे अधिक पुरानी तथा चारों ओर प्रसारित गणितीय विकास है।

गणित का एक विषय के रूप में अध्ययन छठी (6th) सदी ईसा पूर्व गणितज्ञ पाइथागोरस के साथ हुआ, जिन्होंने गणित (Mathematics) शब्द की उत्पत्ति प्राचीन ग्रीक शब्द mathema से मानी है, जिसका अर्थ है "निर्देशों का विषय" (Subject of instruction)। ग्रीक के गणित ने गणितीय विधियों में सुधार करते हुए निगमनात्मक तर्क (Inductive reasoning) का परिचय करवाया। चीन के गणित ने स्थानीय मान का परिचय करवाकर अपना सहयोग दर्ज करवाया। हिन्दू अरब संख्या पद्धति तथा संख्याओं के नियम और संक्रिया आज पूरे विश्व में प्रयोग किये जाते हैं।

यह पद्धति मूलरूप से भारतीय पद्धति है, किन्तु इस पद्धति को हिन्दू अरब पद्धति भी कहा जाता है, क्योंकि अरब के लोग इस प्रणाली को भारत से यूरोप ले गये थे, अन्यथा यह हजारों वर्ष पूर्व भारत के हिन्दुओं में ही प्रयोग की जाती थी। प्राचीनकाल से मध्यकाल तक गणितीय रचनात्मकता में कई सदियों तक प्रवाहहीनता तथा स्थिरता रही। इटली में 16वीं सदी में कला तथा ज्ञान का पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ। उसी समय नये गणितीय विकास तथा नई वैज्ञानिक खोजों की परस्पर क्रिया प्रारंभ हुई। यह पारस्परिक क्रिया वर्तमानकाल में भी जारी है।

प्राग-ऐतिहासिक गणित
(Pre-historic Mathematics)

गणितीय विचारों का मूल संख्या तथा परिमाण (Magnitude) की अवधारणा में निहित है। पशुओं के आधुनिक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि ये अवधारणाएं मनुष्य के लिए अद्वितीय नहीं थीं, बल्कि ये अवधारणा एक शिकारी समाज के दैनिक जीवन में काम आने वाली अवधारणाएं रही होंगी। "संख्या" अवधारणा व विचार भाषा के अस्तित्व के कारण निर्वाह हो पाया, क्योंकि भाषा के कारण ही 'एक', 'दो' और 'कई' (Many) में विभेद हो पाया, किन्तु दो से अधिक संख्या नहीं थी।

Scanned with CamScanner

संभवतः सबसे पुरानी गणितीय वस्तु (Object), लीबोम्बो (Lebombo) की हड्डी है, जोकि स्वाज़ी के लीबोम्बो पर्वतों में पाई गयी। यह लगभग 35000 ई.पू. पाई गई थी। इसमें 29 अलग-अलग दांतेदा हैं। इसी प्रकार समय को बताने वाली वस्तुएं 35000 और 20000 वर्ष पूर्व अफ्रीका तथा फ्रांस में खोजी

नील नदी के किनारे लगभग 20,000 वर्ष पुरानी इशांगो (Ishango) की हड्डी पाई गयी है। इस की लम्बाई में तीन स्तंभों (Column) में मिलान चिह्नों (Tally marks) की एक शृंखला पाई गई है। अनुमान लगाया गया है कि इशांगो की हड्डी या तो प्राकृत संख्याओं के अनुक्रमों (Sequences) को प्र करती है अथवा छः महीनों के चन्द्र कलैण्डर (Lunar Calendar) को प्रदर्शित करती है।

लगभग 5 हजार ईसा पूर्व, इजिप्ट के राजकुलों में ज्यामिति के डिजाइनों को प्रस्तुत किया। यह दावा क्या कि इंग्लैंड, स्कॉटलैंड में 3 हजार ईसापूर्व ज्यामितीय डिजाइन जैसे—वृत्त, दीर्घवृत्त और पाइथागोरस (Triples) को वहां के प्राचीन स्मारकों में प्रयोग किया गया था।

हालांकि उपरोक्त सभी खोजें विवादपूर्ण बतायी जाती हैं और सबसे पुरानी अविवादित गणित का बेबीलोन तथा राजकुलीन इजिप्ट में प्रयोग किया गया माना जाता है। इस प्रकार लगभग 45000 वर्षों में व्य तथा भाषा से गणित का यह रूप प्राप्त हो सका है।

बेबीलोन का गणित
(Babylonian Mathematics)

उस समय अध्ययन का केन्द्र बेबीलोन होने के कारण इसे बेबीलोनीय गणित कहा जाता है। बाद में साम्राज्य के अन्तर्गत मेसोपोटामिया तथा मुख्य रूप से बगदाद इस्लामिक गणित के अध्ययन के मुख्य हो गये। बेबीलोनीय गणित की जानकारी खुदाई में प्राप्त 400 से अधिक चिकनी मिट्टी के क्ले (Clay) शिला से प्राप्त हुई। क्यूनिफोर्म (Cuneiform) लिपि में लिखा गया है कि इन शिलाखण्डों पर खुदाई करके लि जाता था तब ये नर्म होती थीं। बाद में इन्हें सूर्य की गर्मी अथवा अत्यधिक ताप पर पकाया जाता था

लिखित गणित के साक्ष्य प्राचीन सुमेरवासियों (Sumerians) से प्राप्त हुए, जिन्होंने मेसोपोटामिया सभ्यता का निर्माण किया था। सुमेरवासियों ने चिकनी मिट्टी के शिलाखंडों पर गुणा को दर्शाते हुए (Tables) लिखे तथा ज्यामितीय अभ्यास और भाग से संबंधित समस्याएं प्रदर्शित कीं।

1800 से 1600 ई.पू. प्राप्त शिलाखंडों में 'भिन्न, बीजगणित, द्विघात तथा त्रिघात समीकरण, और व्युत्क्रम युग्मों (Reciprocal pairs) की गणना' प्रदर्शित की गई। इन शिलाखंडों में पहाड़े तथा रैखिक और द्वि समीकरणों को हल करने की विधि भी बताई गई थी। बेबीलोनीय शिलाखंड Y.B.C. 7289 में $\sqrt{2}$ का दशमलव स्थानों तक करीब-करीब शुद्धमान दिया गया था।

बेबीलोन के गणित में संख्या पद्धति को 60 के आधार (Sexagesimal) पर प्रदर्शित किया गया इसी के आधार पर आज 1 मिनट में 60 सैकेण्ड, 1 घंटे में 60 मिनट और 360° (60 × 6) एक वृत्त में के का कोण होता है। बेबीलोनवासी गणित में बहुत होशियार थे और वे जानते थे कि 60 के कई भाजक (Divisor होते हैं। बेबीलोनवासियों ने स्थानीय मान व्यवस्था को बहुत अच्छी प्रकार प्रदर्शित किया, जिसमें अधिक वाले अंकों को एक स्तंभ (Column) के बाईं (Left) ओर रखा गया था।

मिस्र (इजिप्ट) का गणित
(Egyptian Mathematics)

मिस्र के गणित को मिस्र की भाषा में लिखा गया है। बाद में मिस्र में गणित का अध्ययन अरब साम्रा के अन्तर्गत किया गया। यहां इस्लामिक गणित का अध्ययन किया गया। मिस्र के विद्वानों की लिखित भा अरबी हो गई। मिस्र के गणित की सबसे विस्तृत पाठ्यपुस्तक रिहिन्द पपायरस 2000-1800 ई.पू. प्राप्त हु इसमें छात्रों के लिए अंकगणित तथा ज्यामिति से सम्बन्धित निर्देश दिए गये थे। इसमें क्षेत्रफल से सम्बन्धि सूत्र, गुणा तथा भाग करने की विधियां, भिन्नों का प्रयोग, अन्य गणितीय जानकारियां और अभाज्य संख्या के विषय में बताया गया था। इसमें दर्शाया गया कि प्रथम क्रम की रैखिक समीकरणों (First order Line

Scanned with CamScanner

कार हल किया जाता है। मिस्र की एक अन्य गणितीय पाठ्यपुस्तक मॉस्को पपायरस भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जिसे 1890 ई.पू. लिखा गया। इसमें गणित को मनोरंजक ा जैसाकि आजकल हम शब्द पहेली या कहानी के रूप में समस्या को प्रस्तुत करते lin Papyrus, 1300 B.C.) में बताया गया है कि प्राचीन मिस्रवासी द्वितीयक्रम ों को हल कर सकते थे।

tics)

गणित का विकास 700BC से 400AD के मध्य माना जाता है। सिकन्दर महान् ा को कई बार हेलेनिस्टिक (Hellenistic) गणित भी कहा जाता है। स्वयं गणित ाचीन यूनानी शब्द मेथमा (Mathema) से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है "निर्देशों Instruction)। यूनान का गणित यूनानी भाषा में ही लिखा गया था। इसका प्रारम्भ les of Miletus) से 624-548 B.C. में माना जाता है। यूनान के गणितज्ञ इटली रे पूर्वी भूमध्यसागर के पास के क्षेत्रों में फैले थे, किन्तु वे सांस्कृतिक तथा भाषायी माना जाता है कि थेल्स यूनान के सात बुद्धिमान व्यक्तियों में प्रथम स्थान पर था। र, "अर्द्धवृत्त पर बना कोण हमेशा समकोण होता है। ("An angle inscribed ight angle.") थेल्स को गणित में निगमनात्मक संगठन (Deductive Organi- अनुमान निकालना का जनक माना जाता है। हालांकि इस बात को बहुत कम व्यक्ति योग में लिए जाने वाली तार्किक संरचनाएं थेल्स ने ही प्रस्तुत की थीं। यह अवश्य के बाद दो सौ वर्षों में ही यूनान ने तार्किक संरचनाएं (Logical Structure) तथा विचार (Idea of Proof) प्रस्तुत किया। गणित के क्षेत्र में यूनान ने अन्य महत्त्वपूर्ण गोरस (Pythagoras of Somos), 580-500 B.C. के माध्यम से प्राप्त की। का प्रयोग कई समस्याओं जैसे–पिरामिड की ऊंचाई ज्ञात करना, छाया के आधार पर दूरी ज्ञात करना, को हल किया। थेल्स ने प्रथम ज्यामितीय प्रमेय का सत्यापन किया। orm of Thales) में इसे वर्णित किया गया है। पाइथागोरस ने समानुपात का सिद्धान्त स (Regular Solid) की संरचना को समझाया। कुछ पुराने स्रोत पाइथागोरस की ो विशेष मानते हैं, जबकि कुछ अन्य दावा करते हैं कि पाइथागोरस ने खोज की गई ापन किया था। आधुनिक इतिहासकार इस सिद्धान्त को बेबीलोन का मानते है तथा त्यापन (Proof) किया है।

न तथा मिस्रवासियों ने जो सिद्धान्त प्रस्तुत किये, उनका सत्यापन यूनानवासियों द्वारा गत ने, गणित के इतिहास में, ज्यामिति के आधारभूत नियमों और सत्यापन के विचार वपूर्ण समय प्रदान किया। यूनान के गणित का संख्या सिद्धांत (Number Theory), athematical Analysis), तार्किक संरचनाएं (Logical Structures) के क्षेत्र में ानी उस समय समाकलन या अवकलन को हल करने के भी ...

Scanned with CamScanner

गणित के इतिहास के अध्ययन से होने वाले लाभ
Profit by the Study of History of Mathematics)

1. किसी भी एक समय में संसार के विभिन्न भागों में होने वाली उन्नति और सांस्कृतिक गतिविधियों के तुलनात्मक अध्ययन में भी गणित का इतिहास बहुत सहायता करता है।
2. गणित का इतिहास हमें यह भी बतलाता है कि गणित एक स्थिर (Static) विषय न होकर गतिशील (Dynamic) विषय है। इसमें वृद्धि और परिवर्तन के लिए कोई रुकावट नहीं है।

Scanned with CamScanner

3. गणित की अपनी भाषा है। इससे सम्बन्धित संकेतों, लिपि, परिभाषाओं, अवधारणाओं को ... तरह से समझने में गणित का इतिहास बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।
4. गणित के बहुत से प्रकरणों को पढ़ाने में उनसे सम्बन्धित पूर्व इतिहास उन्हें अच्छी तरह ... में बहुत सहायता करता है।
5. गणित का इतिहास यह बताता है कि गणित मानव द्वारा निर्मित विज्ञान है। इसमें की जाने ... खोजों के इतिहास से विद्यार्थियों में खोज प्रवृत्ति को प्रेरणा और पोषण मिलता है।
6. गणित के विभिन्न अंगों—अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि के पारस्परिक ... पर ऐतिहासिक प्रकाश डालकर समवायी रूप से शिक्षा देने में गणित का इतिहास बहुत सहायक ...
7. गणित के क्षेत्र में किए जाने वाले आविष्कार और उन्नति किसी एक जाति, राष्ट्र, सम्प्रदाय ... वर्ण की देन नहीं हैं। यह सभी के सामूहिक प्रयास और पारस्परिक सहयोग का परिणाम है। ... पारस्परिक प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव व सहयोग की भावना को उचित बल मिलता है।
8. बालकों को गणित के इतिहास से परिचित कराना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी लाभदायक है। ... प्रारम्भिक अवस्था को जब बच्चा, मानव के गणित सम्बन्धी ज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था से ... करके देखता है तो वह गणित के वर्तमान जटिल रूप से विचलित नहीं होता।
9. गणित जिसे एक शुष्क और रसहीन विषय माना जाता है, उसे रुचिकर और सरस बनाने में ... गणित के इतिहास और आविष्कारों से सम्बन्धित रोचक कहानियां बहुत सहायता कर सकती ...
10. गणित का इतिहास मानव के मानसिक विकास का क्रमबद्ध इतिहास है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ... परिचित कराने तथा संस्कृति से सम्बन्धित बहुत-सी धरोहरों को संजोए रखने में गणित का इति... बहुत सहायता करता है।
11. गणित के क्षेत्र में की जाने वाली प्रत्येक खोज मानव के द्वारा अनुभव की जाने वाली आवश्यक... का परिणाम है। इससे गणित के पूर्णतः व्यावहारिक और उपयोगी होने का प्रमाण मिलता है।
12. गणित का इतिहास पहले की जाने वाली भूलों से परिचित कराकर उन्हें पुनः न दोहराने और ... में कोई परिणाम न निकाल बैठने के लिए पूरी तरह सचेत करता है।
13. इसके ज्ञान से विषय का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित अध्ययन करने तथा अन्य विषयों के ... सह-सम्बन्ध स्थापित करने में भी सहायता मिलती है।
14. गणित के ज्ञान का जिस तरह क्रमिक विकास हुआ उसके अध्ययन से बच्चों को गणित का ... किस प्रकार कराया जाए, यह निर्धारित करने में सहायता मिलती है।
15. गणित का इतिहास विद्यार्थियों में प्रशंसात्मक दृष्टिकोण विकसित करता है। छात्र, दुनिया को ... के क्षेत्र में दी जाने वाली बहुमूल्य उपलब्धियों के बारे में जानकर गौरवान्वित अनुभव करते ... इसी प्रकार विभिन्न गणितज्ञों के प्रयास और अनुसंधान के परिणाम भी गणित के विद्यार्थियों ... लिए प्रशंसात्मक दृष्टिकोण विकसित करते हैं।

भारतीय गणितज्ञों का योगदान
(Contribution of Indian Mathematicians)

भास्कराचार्य
(Bhaskaracharya)

गणित के क्षेत्र में भास्कराचार्य के योगदान की व्याख्या कीजिए।
(Explain the contribution of Bhaskaracharya in the field of Mathematic...

भारतीय गणित में दो प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य के नाम से पैदा हुए हैं। भास्कारार्य-I जोकि आर्य... बाद पैदा हुए थे गणित एवं ज्योतिष के अच्छे स्नातक व टीकाकार थे। परन्तु जिन भास्कराचार्य के का... ब तक गणित पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है वे भास्कराचार्य प्रथम से कई शताब्दी बाद पैदा हुए।

Scanned with CamScanner

सार भास्कराचार्य-द्वितीय के नाम से जानता है।

भास्कराचार्य द्वितीय ने 36 वर्ष की आयु में 1150 ई. में प्रसिद्ध ग्रन्थ "सिद्धान्त शिरोमणि" लिखा। इस न्थ से ज्ञात होता है कि उनका जन्म 1114 ई. में सह्याद्रि पर्वत के पास विज्जड़ विड गांव, जिला मैसूर में ुआ था। उनके पिता का नाम महेश्वर था और वे इनके गुरु थे।

इनके द्वारा रचित ग्रन्थ "सिद्धांत शिरोमणि" को चार खण्डों या अध्यायों में बांटा गया है :

1. लीलावती
2. बीजगणित
3. गोलाध्यान
4. ग्रह गणित

लीलावती वास्तव में अंकगणित से सम्बन्धित एक रोचक व दुर्लभग्रन्थ है। कुछ विद्वानों का मानना है के इस ग्रन्थ का नाम उनकी पुत्री के नाम पर रखा गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि लीलावती उस समय प्रयोग की जाने वाली कोई लेखन परिपाटी का अंग था। कुछ लोगों का मत है कि किन्हीं कारणों से भास्कराचार्य की पुत्री का विवाह नहीं हो पाया तो उन्होंने अपनी पुत्री के नाम को अमर करने के लिए इस रोचक ग्रन्थ का नाम अपनी पुत्री के नाम पर रखा। भास्कराचार्य का प्राचीन गणित में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके द्वारा खोजे गये तरीके आज आधुनिक गणित में स्वीकृत और प्रयोग में लाये जाते हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'लीलावती' में 278 पद हैं। इसमें समीकरणों से सम्बन्धित समस्याओं को अत्यन्त रोचक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

"सिद्धांत शिरोमणि" के अतिरिक्त भास्कराचार्य ने अनेक दुर्लभ ग्रन्थ लिखे। इनमें करण कौतुहल, समय सिद्धांत शिरोमणि, गोलाध्याय रसगुण तथा सूर्य सिद्धांत प्रमुख हैं।

भास्कराचार्य का योगदान
(Contribution of Bhaskaracharya)

1. भास्कराचार्य प्रथम गणितज्ञ थे, जिन्होंने किसी संख्या को 0 से भाग देने पर परिणाम में अनन्त (Infinity) की कल्पना की।

$$\frac{\text{कोई संख्या } x}{0} = \infty \text{ (अनन्त)}$$

इसका आज के गणित में बहुत महत्त्व है। भास्कराचार्य लिखते हैं—"जिस प्रकार अनन्त और अच्युत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत से भूतगणों का प्रवेश होने से अथवा सृष्टि से निकल जाने से कोई विकार नहीं होता। उसी प्रकार इस शून्य हर वाली राशि में बहुत बड़ी संख्या को जोड़ने अथवा घटाने पर कोई परिवर्तन नहीं होता है।"

अतः भास्कराचार्य जानते थे कि अनन्त + x = अनन्त

अर्थात्

$$\frac{x}{0} = 0 \text{ और}$$

$$\infty - x = \infty$$

2. भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ "लीलावती" में संकेतन संख्याओं और भिन्नों के समय प्रक्रियाओं में आम प्रयोग के व्यापारिक नियम, ब्याज, मिश्रण, क्रमचय-संचय, विस्तार कलन आदि के बारे में बहुत सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। शून्य से सम्बन्धित कई नियम भी दिये हैं जैसे—

$$x + 0 = x$$

शून्य की कितनी भी शक्ति (Power) ले लो तो भी परिणाम शून्य ही होगा।

$$x \times (0)^{1000} = x \times 0 = 0$$

3. अपनी पुस्तक "बीजगणित" (Algebra) में उन्होंने सांकेतिक संख्याओं (Symbolized numbers) के विषय में बताया है। उन्होंने ऋणात्मक संख्याओं को संख्याओं के ऊपर बिन्दु (dot)

Scanned with CamScanner

आर्यभट्ट
(Aryabhatta)

एक गणितज्ञ के रूप में आर्यभट्ट के योगदान की व्याख्या कीजिए।
(Explain the contribution of Arya-Bhatta as a Mathematician.)

आर्यभट्ट का जन्म 476 ई. में पटना के निकट कुसुमपुर में हुआ था। उन्होंने 499 ई. में "आर्यभट्ट" ामक पुस्तक लिखी। इन्हें इतिहास में "आर्यभट्ट-I" के नाम से जाना जाता है। आर्यभट्ट का जन्म कहां हुआ। स विषय पर कुछ मतभेद हैं। कुछ लेखकों ने आर्यभट्ट प्रथम को कुसुमपुर निवासी न मानकर केरल निवासी द्ध करने का प्रयास किया है। उनका मत है कि केरल में आज भी आर्यभट्ट द्वारा निर्मित कलैण्डर पद्धति ा प्रयोग किया जाता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्यभट्ट प्रथम केरल के निवासी रहे होंगे।

- आर्यभट्ट की विशेष रचनाओं में से एक है "आर्यभट्टम" जोकि खगोल तालिकाओं (Physical tables) का संग्रह है। इसमें कुल 121 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ से उनकी प्रमुख प्रतिभा का आभास होता है।
- इनकी दूसरी रचना "आर्याष्टशटम्" है जिसमें गंणित भी सम्मिलित है।
- इनकी तीसरी रचना है "काल क्रिया" जोकि समय और इसके माप को दर्शाता है।
- चौथी रचना "गोला" है जोकि गोलीय वस्तुओं से सम्बन्धित है।

योगदान (Contribution) :

1. आर्यभट्ट ने अक्षर संकेत (letter system) का आविष्कार किया। इस पद्धति में अंकों को वर्णमाला के अक्षरों द्वारा प्रकट किया जाता है। इनमें स्वरों (Vowel), व्यंजनों (Consonants) का उपयोग संख्याओं के स्थान पर किया। इन्होंने क, ख, ग, घ आदि को 1, 2, 3, 4, तथा य, र, ल, व, श को 30, 40, 50, 60, 70 से तथा अ, आ, इ, ई, उ, ऊ को 10^1, 10^2, 10^3, 10^4, 10^5 आदि से

Scanned with CamScanner

इसे हम निम्न उदाहरण से व्यक्त कर सकते हैं :

य = 2 + 30 = 32

य) × उ = (2 + 30) × 10^4 = 320000

अपनी पुस्तक "आर्यभटीय" में वर्गमूल तथा घनमूल ज्ञात करने की विधियां दी हैं। इस प्रकार स्पष्ट किया है जिसमें इकाई, सैकड़ा, दस हजार आदि विषम (Odd) र्गस्थान (Square Place) तथा दहाई, हजार, लाख आदि सम (Even) स्थानों को non square places) माना है। वर्गमूल ज्ञात करने की विधि का स्पष्टीकरण निम्न है—

ा करने के लिए अन्तिम वर्ग स्थान में से बड़ी से बड़ी जो वर्ग संख्या घटती है, उसे के बाद वर्ग मूल के दुगुने से अवर्ग स्थान को भाग दो। भाग करने के बाद प्राप्त भागफल) के वर्ग को आगे के वर्गस्थान में से हटा दो। भागफल की ओर प्रथम पंक्ति में रही र्गमूल सूचित करती है।"

रण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

वर्ग संख्या घटाने पर	11025	
गुने से भाग देने पर	1	1 का वर्गमूल =1
2	10	
	0	
वर्ग को घटाने पर	10	
के दुगुने से भाग देने पर	0	यहां तक वर्गमूल = 10
20	102 | 5	
	100	
वर्ग को घटाने पर	25	
	25	
	×	

उदाहरण में 11025 का अभीष्ट वर्गमूल = 105 होगा।

मान भी आर्यभट्ट ने विश्व में सबसे पहले ज्ञात कर दिया था। आर्यभट्ट ने ही π का मान 3.1416 दिया था परन्तु उन्होंने स्वयं इसका प्रयोग नहीं किया। π सम्बन्धी उनका बहुत रोचक है। उन्होंने कहा—"100 में 4 जोड़ दो, 8 के साथ गुणा करो, 62000 उत्तर ऐसे वृत्त की लगभग परिधि होगी जिसका व्यास 20000 है।

π (पाई) का मूल्य

$$\pi = \text{परिधि/व्यास}$$

$$\pi = \frac{62832}{20000} = 3.1416$$

अपनी पुस्तक "आर्यभटीय" में क्षेत्रफल की गणना का विस्तार से वर्णन किया था। में उन्होंने वर्ग, त्रिभुज, चतुर्भुज, वृत्त, गोला आदि का क्षेत्रफल ज्ञात करने की विधियों का वर्णन किया है।

Algebra) के क्षेत्र में भी आर्यभट्ट का विशेष योगदान है।

Scanned with CamScanner

ण : 51529 का वर्गमूल ज्ञात करो।

529 (2

(i) बड़ी से बड़ी वर्ग संख्या घटाने पर

(2 (ii) वर्ग के दुगुने से भाग देने पर

5

4 (iii) भागफल के वर्ग को घटाने पर

12 (7

08 (iv) वर्गमूल (22) के दुगने से भाग देने पर

49

49 (v) भागफल के वर्ग को घटाने पर

×

तर 51529 का अभीष्ट वर्गमूल = 227 होगा।

ने अपने ग्रंथ "आर्यभटीय" में क्षेत्रफल ज्ञात करने की विधियों का विस्तार से उल्लेख किया त्रफल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, चतुर्भुज का क्षेत्रफल, वृत्त का क्षेत्रफल, गोले का क्षेत्रफल आदि ज्ञात धियों एवं सूत्रों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

श्रीनिवास रामानुजम का जीवन इतिहास
(Life history of Shriniwas Ramanujam)

स रामानुजम के जीवन इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालें।

अथवा

म को महान गणितज्ञ कहा जाता है, क्यों?

अथवा

कार के रूप में रामानुजम के योगदान की व्याख्या कीजिए।

स्कूल का एक अध्यापक तीसरी श्रेणी (Third Class) के अपने विद्यार्थियों को समझा रहा था संख्या को उसी संख्या से भाग देने पर भागफल एक प्राप्त होता है।" सब बच्चे चुपचाप सुनते क छात्र से न रहा गया और वह एकदम खड़ा होकर बोला "साहब, क्या यह नियम शून्य पर है।"

ोटी अवस्था में इतना बड़ा गूढ़ प्रश्न जिसने अध्यापक को भी चक्कर में डाल दिया था, वे थे ज्ञ रामानुजम। तीसरी कक्षा में ही इन्होंने बीजगणित आदि का इण्टरमीडिएट कक्षाओं तक का न कर लिया था। चौथी कक्षा में आते-आते बी.ए. की त्रिकोणमिति के कठिन प्रश्न हल करने

म सही अर्थों में प्रतिभा के धनी थे। इनका जन्म 22 दिसम्बर, 1887 ई. में मद्रास के तंजौर जिले नामक एक छोटे से गांव में हुआ। रामानुजम के पिता एक निर्धन ब्राह्मण थे वह कपड़े की दुकान नौकरी करके अपने परिवार का पेट पालते थे। रामानुजम ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा "कुम्बकोनम" अपनी कक्षाओं में ये सदैव प्रथम आते थे। इन्हें बाल्यावस्था से ही गणित का शौक था। यहां ने दोस्तों का मनोरंजन भी गणित के सूत्रों से किया करते थे। इनकी गणित की प्रतिभा से प्रभावित ध्यापक ने मात्र 12 वर्ष की आयु में ही

Scanned with CamScanner

पाठ्यक्रम क्या है ?
(What is Curriculum?)

पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी के 'क्यूरीक्यूलम' (Curriculum) शब्द का पर्यायवाची है। 'Curriculum' शब्द एक लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ है 'दौड़ने का मैदान'। शिक्षा के क्षेत्र में इसका तात्पर्य विद्यार्थी के दौड़ के मैदान से है। शिक्षा की तुलना एक दौड़ से की जाती है जिसमें पाठ्यक्रम वह दौड़ का मैदान

है, जिसको पार करके एक दौड़ने वाला अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच जाता है। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम वह मार्ग है जिसका अनुसरण करके विद्यार्थी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करता है। कनिंघम के अनुसार, ''पाठ्यक्रम कलाकार (अध्यापक) के हाथ में वह साधन है जिससे कि वह पदार्थ (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपने स्टूडियो (स्कूल) में ढाल सके।'' ("The curriculum is the tool in the hands of the artist (the teacher) to mould his material (the pupil) according to his ideal (objective) in his studio (the school).

पाठ्यक्रम का क्षेत्र बहुधा कक्षा में कमरे के अंदर दिए हुए ज्ञान तक ही सीमित रखा जाता है, परंतु इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पी. सेमुअल ने पाठ्यक्रम की परिभाषा की इस प्रकार व्याख्या की है—

''पाठ्यक्रम में विद्यार्थी के वे सभी अनुभव निहित होते हैं जो वह अपनी कक्षा के कमरे में, प्रयोगशाला में, पुस्तकालय में, स्कूल में होने वाली अन्य पाठ्यांतर क्रियाओं (Cocurricular Activities) के द्वारा, खेल के मैदान में एवं अपने अध्यापकों तथा सहपाठियों से विचारों के आदान-प्रदान के द्वारा प्राप्त करता है।'' (The curriculum is the sum total of the experiences of the pupil that he receives through the manifold activities that go on in the school, in the classroom, in the laboratory, in the workshop, in the playground and in the numerous informal contacts between the teacher and the pupil.)

उपरोक्त अर्थों से यह भलीभाँति स्पष्ट हो सकता है कि पाठ्यक्रम अध्ययन तथा अनुभवों का एक क्रम है, जिसके अनुसार चलकर विद्यार्थी शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करता है। गणित का पाठ्यक्रम जिसमें गणित संबंधी सभी प्रकार के अध्ययन तथा अनुभवों का समावेश है, शिक्षा के विस्तृत पाठ्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंश है, जो शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में भरसक सहयोग देता है।

किसी भी विषय के शिक्षण के उद्देश्यों—जो शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही निर्धारित किए जाते हैं—के अनुसार ही उस विषय का पाठ्यक्रम बनाया जाता है। गणित के पाठ्यक्रम के लिए भी जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि गणित में हम क्या-क्या पढ़ाएँ, किस-किस प्रकार का ज्ञान तथा अनुभव छात्रों को दिया जाए अथवा वे स्वयं ग्रहण करें, तब इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमें एक प्रश्न के रूप में ही मिलता है। वह प्रश्न है कि गणित क्यों पढ़ाया जाए? गणित पढ़ाने के क्या-क्या उद्देश्य हैं? पाठ्यक्रम उद्देश्यों की पूर्ति का एक साधन है। अतएव वह सब कुछ जो इन उद्देश्यों की पूर्ति में सरल रूप से सहायक सिद्ध हो सके, पाठ्यक्रम के अंतर्गत अवश्य आना चाहिए। गणित के मुख्य-मुख्य उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए निम्न सिद्धांत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

गणित पाठ्यक्रम की रचना के सिद्धांत
(Principles of Curriculum Construction in Mathematics)

1. नियमित मूल्य का सिद्धांत (Principle of Disciplinary Value)
2. उच्च कक्षाओं की आवश्यकता पूर्ति (Useful for Higher Education)
3. उपयोगिता का सिद्धांत (Principle of Utility)
4. बालक को केंद्र मानने का सिद्धांत (Principle of Child-centredness)
5. क्रियाशीलता का सिद्धांत (Principle of Activity)
6. अध्यापक से परामर्श का सिद्धांत (Principle of Consultation with Teachers)

गणित का उद्देश्य विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति, विचार शक्ति, तर्क शक्ति, स्मरण शक्ति, अन्वेषण शक्ति, इच्छा शक्ति, एकाग्रता आदि मानसिक शक्तियों का विकास करके तथा सत्यता, आत्म निर्भरता, आत्म विश्वास, आत्म संयम इत्यादि गुणों को भरकर मन को नियमित करना है। गणित के जो अंग इस प्रकार मन को नियमित करते हैं, उन्हें इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। प्राचीन काल में जबकि गणित की शिक्षा केवल नियमित मूल्यों की प्राप्ति के लिए ही दी जाती थी, तब पाठ्यक्रम में ऐसी बहुत सी व्यर्थ की सामग्री को केवल इसलिए स्थान दिया हुआ था कि उसे मन को नियमित करने वाला समझा जाता था।

परंतु आज गणित का उद्देश्य मन को नियमित रखने तक ही सीमित नहीं, इसलिए किसी भी अंश को केवल इसलिए ही पाठ्यक्रम में स्थान नहीं दिया जा सकता कि उसके द्वारा कुछ नियमित मूल्यों की प्राप्ति हो जाती है। पाठ्यक्रम में स्थान पाने के लिए उसके द्वारा कुछ अन्य उद्देश्यों की पूर्ति होना आवश्यक है और यह भी एक स्पष्ट तथ्य है कि जीवनोपयोगी वास्तविक समस्याओं के द्वारा काल्पनिक, अनुपयोगी एवं व्यर्थ की समस्याओं की अपेक्षा कहीं अधिक मन को स्वस्थ एवं उपयोगी बनाया जा सकता है। रबड़ का चबाना जबड़ों के लिए एक अच्छा व्यायाम हो सकता है, परंतु इसे भोजन के रूप में प्रयोग करने के बारे में शायद ही कोई सोचता होगा और फिर कौन इतना मूर्ख होगा कि वह किसी अखाद्य तथा हानिकारक पदार्थ को केवल इसलिए चबाना चाहेगा कि इससे उसके जबड़े मजबूत होंगे।

अगर केवल एक ही प्रकार के अंश के अध्ययन से जीवनोपयोगी ज्ञान तथा नियमित मूल्य दोनों ही प्राप्त होते हों तो किसी एक अंश को नियमित मूल्य के लिए तथा दूसरे को उपयोगी ज्ञान के लिए पढ़ाना मूर्खता ही है। अत: किसी भी अंश को केवल इसलिए पाठ्यक्रम में शामिल नहीं किया जा सकता कि उसका कुछ नियमित मूल्य है और फिर यह सभी जानते हैं कि मानसिक शक्तियों तथा अन्य नैतिक गुणों का विकास अधिकतर स्वयं अध्यापक और उसके पढ़ाने के ढंग पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से गणित के सभी अंश एक-जैसे महत्त्वपूर्ण हैं। अच्छे प्रशिक्षित एवं ईमानदार अध्यापकों के द्वारा किसी भी उचित विधि के द्वारा पढ़ाने से किसी भी अंश से नियमित मूल्यों की प्राप्ति हो सकती है। थोर्नडाइक ने भी कहा है कि 'किसी भी अंग को केवल इसलिए न पढ़ाया जाए कि उसका कुछ नियमित मूल्य है, परंतु सभी अंगों को इस तरह पढ़ाया जाए कि उनके द्वारा नियमित मूल्यों की प्राप्ति हो सके।' (Teach nothing merely because of its disciplinary value but teach everything so is to get what disciplinary value it does have.)

उच्च कक्षाओं की आवश्यकता-पूर्ति

शिक्षा किसी एक प्रकार के स्कूलों की सबसे ऊँची कक्षा तक ही समाप्त नहीं हो जाती। प्राइमरी कक्षाओं के पश्चात मिडिल, मिडिल के बाद हाईस्कूल अथवा सीनियर सेकेंडरी और सीनियर सेकेंडरी के बाद में कॉलेज, यूनिवर्सिटी अथवा और किसी प्रकार के तकनीकी ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। अत: पाठ्यक्रम में उन सभी बातों का समावेश होना चाहिए जिनकी ऊँची कक्षाओं की पढ़ाई में आवश्यकता है। यद्यपि इस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता बच्चों को उन कक्षाओं में प्रतीत नहीं होती, परंतु उच्च श्रेणियों में इसी आधारशिला के ऊपर ही नवीन ज्ञान दिया जाता है। बच्चे जब ऊँची कक्षाओं में पहुँचते हैं तो अगर उन्होंने अपनी पिछली कक्षाओं में उन बातों का अध्ययन नहीं किया होता जो ऊँची कक्षाओं में काम आती हैं, तब उन्हें बहुत ही असुविधा का सामना करना पड़ता है।

इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुए उच्च श्रेणियों में प्रवेश निम्न श्रेणियों के आवश्यक ज्ञान का परीक्षण करके ही दिया जाता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि पाठ्यक्रम में उन सभी बातों का समावेश हो जिनकी ऊँची कक्षाओं में ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यकता है।

परंतु इस सिद्धांत से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पाठ्यक्रम में केवल उन अंशों को सम्मिलित किया जाए जो ऊँची कक्षाओं की ज्ञान-प्राप्ति में सहायक हों अथवा छात्रों को उच्च कक्षाओं में प्रवेश दिलाने के योग्य बना सकें। ऊँची कक्षाओं में जाने वालों की संख्या बहुत अधिक नहीं होती। इसलिए कुछ विद्यार्थियों के कारण जो उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, हाईस्कूल की कक्षाओं के पाठ्यक्रम को बहुत अधिक लंबा और अनुपयोगी करना तथा अन्य सभी विद्यार्थियों के लिए ऐसे व्यर्थ की ज्ञान प्राप्ति को आवश्यक करना शैक्षणिक तथा मानवीय दृष्टि से गंभीर अपराध है। किसी भी परिस्थिति में निम्न श्रेणियों के पाठ्यक्रम को ऊँची कक्षाओं की आवश्यकता का दास नहीं बनाया जा सकता। हमें उन अधिकांश बच्चों की आवश्यकता को अधिक महत्त्व देना होगा जो अपना विद्यार्थी जीवन समाप्त कर जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हैं। शिक्षा के द्वारा हमने उन्हें इस योग्य बना देना है कि वह जीवन की समस्याओं को भलीभाँति हल कर सकें तथा एक योग्य और सभ्य नागरिक बन सकें। जो बच्चे आगे पढ़ना चाहते हैं उनको योग्य बनाने के तो बहुत अवसर हैं, वे तो बाद में भी अध्यापकों के निरीक्षण में ही रहते हैं।

उपरोक्त विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ऊँची कक्षाओं की आवश्यकता पूर्ति को छोटी कक्षाओं के पाठ्यक्रम में बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। केवल अत्यंत उपयोगी सामग्री को ही इस नियम के आधार पर पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए।

उपयोगी का सिद्धांत

यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। इसके अनुसार केवल वे अंश, जिनका कुछ व्यावहारिक जीवन में उपयोग है, पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने चाहिए। इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि गणित का ज्ञान केवल ज्ञान के लिए ही नहीं दिया जाए वरन इस ज्ञान द्वारा विद्यार्थियों को दैनिक जीवन में गणित संबंधी समस्याओं को हल करने योग्य बनाया जाए। उन सभी बातों को जिनका वास्तविक जीवन में कोई उपयोग नहीं होता पाठ्यक्रम में कभी भी कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए। परंतु उपयोगिता का अर्थ केवल गणित के व्यावहारिक मूल्य से ही नहीं लगाना चाहिए। उपयोगिता को कुछ अधिक विस्तृत अर्थ में लेकर पाठ्यक्रम में उन सभी बातों का समावेश होना चाहिए जो—

(*i*) दैनिक जीवन में उपयोगी हों।

(*ii*) पाठ्यक्रम के अन्य विषयों के अध्ययन में सहायक हों।

(*iii*) संस्कृति और सभ्यता को भलीभाँति समझने और उसकी उन्नति में सहायक हों।

(*iv*) विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में सहायक हों।

(*v*) व्यापार, उद्योग, इंजीनियरिंग इत्यादि की उन्नति में गणित की उपयोगिता का विद्यार्थियों को ज्ञान कराने में सहायक हों।

(*vi*) गणित के कलात्मक तथा मनोरंजन संबंधी मूल्यों की प्राप्ति में सहायक हों।

(*vii*) गणित के इतिहास तथा गणितज्ञों की जीवनी से परिचित कराकर गणित के प्रति प्रेम में विद्यार्थियों को प्रेरणा प्रदान करें।

(*viii*) वैज्ञानिक तथा तकनीकी उन्नति को समझने तथा नवीन आविष्कारों में सहायक सिद्ध हों।

बालक को केंद्र मानने का सिद्धांत

गणित के पाठ्यक्रम को हम अच्छा तब ही कहेंगे जबकि वह बालक तथा समाज दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करेगा। मनोविज्ञान के अनुसार बालकों की शिक्षा की व्यवस्था उनको केंद्र मानकर उनकी रुचि, योग्यता, आवश्यकता तथा सामर्थ्य के अनुकूल ही होनी चाहिए। पाठ्यक्रम, सामग्री को केंद्र मानकर नहीं बल्कि बालक को केंद्र मानकर बनाना चाहिए। बालक को बालक ही समझना चाहिए, उसकी हम एक प्रौढ़ व्यक्ति से तुलना नहीं कर सकते। आयु के साथ-साथ बालक की शारीरिक और मानसिक शक्तियों में परिवर्तन होते रहते हैं। उसकी अभिरुचि तथा योग्यता अवस्था के साथ-साथ बदलती रहती है। प्रत्येक अवस्था में अपनी विशेषताएँ होती हैं, इसलिए शिक्षण में भी तदनुकूल परिवर्तन करना आवश्यक है। किसी भी परिस्थिति में हमें बालकों को पाठ्यक्रम का दास नहीं बनाना चाहिए। पाठ्यक्रम तो विद्यार्थियों की सब प्रकार से उन्नति एवं कल्याण करने के लिए ही होता है। अत: विद्यार्थियों का जिस तरह भी अधिक-से-अधिक भला हो सकता है, उसके अनुकूल ही पाठ्यक्रम की रचना होनी चाहिए। बालक का अपना एक अलग ही व्यक्तित्व होता है। उसको केंद्र मानकर जो पाठ्यक्रम बनाया जाएगा, वह कभी भी कठिन न होगा, वरन उसके लिए हर तरह से उपयोगी ही सिद्ध होगा।

क्रियाशीलता का सिद्धांत

बच्चे स्वभाव से ही क्रियाशील होते हैं तथा उन बातों में अधिक रुचि लेते हैं जिनमें कुछ खेलकूद तथा अन्य क्रियाएँ होती हैं। जब विद्यार्थी मानसिक तथा शारीरिक रूप से क्रियाशील होते हैं तो वे थोड़े से समय में ही गणित के भिन्न-भिन्न तथ्यों का स्थायी ज्ञान बहुत सुविधा से ग्रहण कर सकते हैं। इससे बालकों को गणित का विषय नीरस तथा कठिन नहीं मालूम पड़ता। इसलिए गणित के पाठ्यक्रम में कुछ ऐसी बातें रखनी चाहिए जिनसे विद्यार्थियों को क्रियाशील रहने का अवसर मिल सके तथा वे स्वयं अनुभवों के आधार पर इस विषय का व्यावहारिक रूप में सरलतापूर्वक अध्ययन कर सकें।

अध्यापक से परामर्श का सिद्धांत

पाठ्यक्रम के निर्माण में अध्यापक से परामर्श लेना बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। अध्यापक को इसकी वास्तविक त्रुटियों का पूर्ण ज्ञान होता है। वह अपने अनुभवों के आधार पर इसके निर्माण में बहुत ही उपयोगी सुझाव दे सकता है। वास्तव में पाठ्यक्रम तो अध्यापक के लिए ही बनाया जाता है। यदि जिसके लिए यह बनाया जाता है, उसी की राय न ली जाए तो इसके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होने में संदेह ही है। इसलिए अच्छा तो यही है कि पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए अध्यापक को उचित स्थान प्रदान किया जाए।

उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए ही पाठ्यक्रम का चुनाव करना चाहिए। परंतु अगर एक-एक सिद्धांत के हिसाब से सामग्री को इकट्ठा किया जाए तो इतनी सामग्री एकत्रित हो सकती है कि उसे विद्यार्थी जीवन में पढ़ना ही असंभव हो जाए। अत: सिद्धांतों के अपने-अपने हिस्से (Share) के हिसाब से पाठ्य सामग्री को एकत्रित करने का यहाँ कोई प्रश्न नहीं है, बल्कि गणित की मुख्य-मुख्य बातों को ही, जो अधिकतर सभी विद्वानों के अनुकूल हों, पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम के बारे में एक बात और भी है कि पाठ्यक्रम में दृढ़ता न होकर लचीलापन होना चाहिए। परिस्थिति, काल, विचार तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल ही इसमें समय-समय पर संशोधन

अवश्य होने चाहिए। गणित के पाठ्यक्रम में समय-समय पर नवीन ज्ञान का समावेश भी होते रहना चाहिए अन्यथा हम संसार की प्रगति के साथ-साथ कदम-से-कदम मिलाकर नहीं चल सकेंगे।

गणित पाठ्यक्रम का विकास
(Development of a Mathematics Curriculum)

किसी कक्षा या स्तर के पाठ्यक्रम का निर्माण करने के लिए प्राय: कुछ व्यक्तियों की एक समिति बना दी जाती है। पाठ्यक्रम को पाठ्यचर्चा (Syllabus) के रूप में लेती हुई यह समिति विषय अध्यापकों द्वारा उन सभी प्रकरणों और उपप्रकरणों की क्रमबद्ध रूप से चर्चा कर देती है जिन्हें उन्हें कक्षा में पूरे वर्ष पढ़ाना होता है। गत कुछ वर्षों से इस दृष्टिकोण में काफी कुछ अंतर आया है। पाठ्यचर्चा (Syllabus) के स्थान पर पाठ्यक्रम (Curriculum) का विस्तृत क्षेत्र अब अच्छी तरह प्रकाश में आने लगा है। विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के लिए विद्यालय और अध्यापक के मार्ग निर्देशन में विषय संबंधी जो भी अनुभव विद्यार्थी को प्राप्त होते हैं उन सबका समावेश करना आज गणित के पाठ्यक्रम में आवश्यक हो गया है। पाठ्यक्रम समिति को एक संतुलित पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए आज एक निश्चित प्रक्रिया में से गुजरना पड़ता है। इस क्रिया के मुख्य सोपान निम्न हैं :

(A) प्राप्य उद्देश्यों का निर्माण (Formulation of Objectives)
(B) पाठ्य वस्तु और प्रकरणों का चुनाव एवं आयोजन (Selection and Organisation of Contents and Topics)
(C) समुचित अधिगम अनुभव सुझाना (Suggesting appropriate learning experiences)
(D) मूल्यांकन की उचित विधियाँ एवं तकनीक सुझाना (Suggesting suitable methods and techniques for evaluation)

आइए इन सोपानों के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त किया जाए :

(A) उद्देश्य निर्माण (Formulation of Objectives)

पाठ्यक्रम निर्माण का प्रारंभ प्राप्य उद्देश्यों के निर्माण द्वारा होता है। अत: किसी भी कक्षा या स्तर के गणित पाठ्यक्रम के निर्माण में सबसे पहले उस कक्षा या स्तर पर गणित पढ़ाने के प्राप्य उद्देश्यों को लिखा जाता है। ये प्राप्य उद्देश्य व्याख्या करने के दृष्टिकोण से ज्ञान, दक्षता, प्रयोग, दृष्टिकोण तथा अनुभूति से संबंधित पाँच मुख्य श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं। आगे चलकर इन प्राप्य उद्देश्यों को विद्यार्थियों में गणित शिक्षण द्वारा होने वाले अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों (Expected behavioural changes) के रूप में लिखा जा सकता है। प्राप्य उद्देश्य तथा संबंधित अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों का उचित रूप में लिखा जाना एक पाठ्यक्रम में आवश्यक होता है, इस बात पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

(B) पाठ्य वस्तु और प्रकरणों का चुनाव एवं आयोजन
(Selection and Organisation of Contents and Topics)

निहित प्राप्य उद्देश्यों एवं संबंधित अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों की प्राप्ति पाठ्य वस्तु और प्रकरणों के उचित चुनाव एवं आयोजन पर निर्भर करती है। उचित चुनाव के कार्य में पाठ्यक्रम चुनाव के कुछ सिद्धांतों की चर्चा हम इस अध्याय के प्रारंभ में कर चुके हैं। इन सामान्य सिद्धांतों के अतिरिक्त आधुनिक गणित की पाठ्य वस्तु और चिंतन तथा तर्क शैली को ध्यान में रखते हुए कुछ निम्न बातों को

ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

(*i*) अंकगणित को अपने आप में एक स्वतंत्र उपविषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। समय और शक्ति का उचित उपयोग करने के लिए इसे बीजगणित, रेखागणित आदि इकाइयों में पूरी तरह समन्वित करके ही पढ़ाया जाना चाहिए।

(*ii*) गणित की मूल प्रकृति और उसके स्वरूप को समझने की दिशा में ध्यान किया जाना चाहिए। अब तक गणित को एक ऐसे साधन मात्र के रूप में पढ़ाया जाता रहा है जो गणन दक्षता (Computation skill) को विकसित कर सके अथवा कुछ नियमों को कंठस्थ करके अथवा गणितीय संकेतों को समझकर उन्हें बिना अधिक सोचे-समझे प्रयोग में लाने में समर्थ बना सके। आधुनिक गणित के प्रादुर्भाव ने आवश्यक बना दिया है कि हम गणित शिक्षण द्वारा गणित की मूल धारणाओं, सिद्धांतों और उसके सही रूप को समझने की चेष्टा करें। संख्या संबंधी विभिन्न संरचनाओं या प्रणालियों तथा तर्क प्रणाली द्वारा गणित के तथ्यों तक पहुँचने, गणित की संकेतमयी भाषा को पूरी तरह जानने, और संपूर्ण गणित को समुच्चय भाषा और तार्किक प्रणाली द्वारा एक इकाई के रूप में समझने के प्रयासों को आज गणित के पाठ्यक्रम में समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।

(*iii*) बीजगणित में आजकल बहुत सारा समय व्यर्थ के ऐसे पेचीदा प्रश्नों के हल में लगा दिया है जिनमें केवल यांत्रिक रूप से बिना सोचे-समझे सूत्रों और विधियों का प्रयोग किया जाता है। लघुत्तम, महत्तम, वर्गमूल, गुणनखंड, अनुपात, समानुपात, करणी, घात इत्यादि सब ऐसे ही उदाहरण हैं। इन सबको आधुनिक युग और आधुनिक गणित की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बदला जाना चाहिए। नवोदित स्वरूप के अनुसार बीजगणित में अब हमें उसकी संरचना और उसके निगमनात्मक स्वरूप (Deductive Character) पर समुचित ध्यान देना आवश्यक है। नवीन पाठ्यक्रम में आज गणित को एकीकरण करने वाली धारणाओं समुच्चय, संबंध (Relations), फलन (Functions), चर राशि (Variables) आदि की विवेचना होनी चाहिए तथा फिर बीजगणितीय मूल संरचनाओं ग्रुप, रिंग, फील्ड आदि का उल्लेख होना चाहिए।

(*iv*) यूक्लिड ज्यामिति के दोषों और आज के संदर्भ में उसमें परिवर्तन लाने अथवा उसको किसी दूसरी ज्यामिति से बदलने की आवश्यकता को पाठ्यक्रम में पूरी तरह अनुभव किया जाना चाहिए। यूक्लिड ने ज्यामिति का सृजन-भौतिक विश्व को प्रतिमान मानकर किया था। अपने अभिगृहीतों को उसने इस प्रतिमान (Model) में सत्य पाया और उन्हें स्वयं सिद्ध (Self evident truth) की संज्ञा दी। परंतु आज के गणित में अभिगृहीतों को केवल किसी भी प्रणाली को प्रारंभ करने की आधारशिला के रूप में माना जाता है। परिणामस्वरूप आज कई ज्यामितियाँ हैं जिनका ज्ञान विद्यार्थियों को कराया जाना चाहिए। इन सबका ज्ञान कराने के साथ-साथ रेखागणित में जो आवश्यक बात है वह है उसकी मूल संरचनाओं और निगमनात्मक प्रणाली से प्रमाण विकसित करने के कौशल से परिचित कराना। इस बात का गणित के पाठ्यक्रम में विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। रेखागणित बीजगणितीय विवेचन को एक दूसरे से अलग-थलग न करके एकीकृत रूप में प्रस्तुत करने पर बल दिया जाना भी आवश्यक है। "यदि–तो" (If, then) प्रकार के कथनों को आधार स्तंभ मानकर तर्कशास्त्र के नियमों द्वारा विषय को ठीक प्रकार क्रमबद्ध रूप से विकसित करना आज के पाठ्यक्रम का उद्देश्य बने, यह प्रयत्न करना चाहिए।

(*v*) त्रिकोणमिति (Trigonometry) को बीजगणित से संबंधित और एकीकृत करके पढ़ाया जाना

चाहिए। बहुत से अनावश्यक प्रकरण जैसे सर्वसमिकाएँ (Identies), त्रिभुजीय हल (Solution of triangles) आदि हटा दिए जाने चाहिए और त्रिकोणमितीय फलन (Trigonometric functions) एवं परिकलनीय फलन (Logarithmic functions) पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

(vi) कोआर्डीनेट ज्यामिति (Coordinate Geometry) संबंधी धारणाओं को प्रारंभिक कक्षाओं से ही विकसित किया जाना चाहिए। इन्हें बीजगणित में रेखाचित्रों (Graphs) के साथ भी संबंधित करके दोनों उपविषयों को एकीकृत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(vii) आँकड़ा विज्ञान (Statistics) की प्रमुख धारणाओं और संप्रत्ययों जैसे मध्यमान (Mean), मध्यांक (Median), बहुलक (Mode), विचलन (Deviation), संभाव्यता (Probability), सह-संबंध (Correlation) आदि का ज्ञान भी इनकी बढ़ती हुई आज की माँग को देखते हुए गणित के पाठ्यक्रम द्वारा दिया जाना चाहिए।

यह तय करने के बाद कि गणित के पाठ्यक्रम में किस प्रकार की अध्ययन सामग्री और प्रकरणों का समावेश किया जाना चाहिए, दूसरा चरण इस चयन की हुई सामग्री और प्रकरणों को आयोजित करने से संबंधित होता है। आयोजन कैसे किया जाए इस संदर्भ में आगे लिखे हुए सिद्धांत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

पाठ्यक्रम आयोजन के सिद्धांत
(Principles of Curriculum Organisation)

1. तार्किक तथा मनोवैज्ञानिक क्रम का सिद्धांत (Principle of Logical *v/s* Psychological order)
2. क्रिया का सिद्धांत (Principle of Activity)
3. कठिनाई का सिद्धांत (Criterion of Difficulty)
4. प्राकरणिक क्रम तथा प्राकरणिक अंश के क्रम का सिद्धांत (Principle of Topical *v/s* Concentric Order)
5. आयोजित तथा प्रासंगिक पढ़ाई का सिद्धांत (Principle of Organised *v/s* Incidental Teaching)
6. समवाय का सिद्धांत (Principle of Correlation)
7. व्यक्तिगत एवं सामूहिक पढ़ाई का सिद्धांत (Principle of Individual *v/s* Collective Teaching)

1. तार्किक तथा मनोवैज्ञानिक क्रम का सिद्धांत

मनोवैज्ञानिक सिद्धांत में विषय को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। बच्चे के लिए विषय की उपयोगिता तथा उसके मानसिक विकास एवं रुचियों को ही आयोजन का आधार माना जाता है। इसके अनुसार विषय बच्चे के लिए है न कि बच्चा विषय के लिए। जिस स्तर पर बच्चा जिस वस्तु को पढ़ने की आवश्यकता अनुभव करता है, वह उसे उसी समय पढ़ाई जाती है।

इसके विपरीत तार्किक क्रम में विषय को ही केंद्र मानकर पाठ्यक्रम आयोजित किया जाता है। इसमें सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान पर विशेष बल दिया जाता है। गणित की पाठ्य सामग्री को तर्क के आधार पर क्रमबद्ध एक-दूसरे से संबंधित करके श्रेणियों में बाँट दिया जाता है। जैसे पहली श्रेणी में

गिनना, दूसरी में जोड़ना, तीसरी में गुणा-भाग, चौथी में चारों प्रारंभिक नियमों के मिश्रित रूप इत्यादि।

तर्क के अनुसार जब हम पाठ्यक्रम का चुनाव करते हैं तो मनोविज्ञान से बहुत दूर चले जाते हैं। जैसे, तर्क तो यह कहता है कि गिनती का ज्ञान देने के तुरंत बाद ही भिन्नों के लिए दशमलव का ज्ञान दिया जाना चाहिए, पहले सारा क्षेत्रफल पढ़ाना चाहिए तथा फिर घनफल और पहली श्रेणी में केवल गिनती, दूसरी में केवल जोड़, बाकी, तथा तीसरी में गुणा व भाग कराने चाहिए आदि-आदि परंतु ये सब बातें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के प्रतिकूल तो हैं ही, शिक्षा के सिद्धांतों से भी इनका कोई मेल नहीं है। दूसरी ओर, अगर केवल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम आयोजित किया जाता है तो क्रम और व्यवस्था को तिलांजलि देनी पड़ती है और तब तो पाठ्यक्रम के बनाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि न तो केवल तार्किक और न मनोवैज्ञानिक सिद्धांत अपने आप में पूर्ण हैं। हमें यह प्रयत्न करना है कि दोनों को किस तरह मिलाया जाए कि आयोजन में दोनों के दोष समाप्त हो सकें। मनोविज्ञान की सहायता से बच्चों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों और शारीरिक तथा मानसिक विकास के अनुसार उनकी योग्यता का अनुमान करने के पश्चात इनके आधार पर तर्कसम्मत क्रम में पाठ्यक्रम का आयोजन किया जा सकता है। वास्तव में हम तर्कसम्मत क्रम में पाठ्यक्रम आयोजन कई प्रकार से कर सकते हैं, परंतु कौन सा क्रम बच्चों की रुचि और उनके मानसिक विकास के अनुकूल होगा यह हम मनोवैज्ञानिक सिद्धांत पर ही निश्चित करेंगे। इस तरह से एक ओर तो तार्किक दृष्टिकोण विषयवस्तु को क्रम और व्यवस्था देने में सहायक सिद्ध होगा तो दूसरी ओर यह आयोजन बच्चों को केंद्र बनाकर किया जा सकेगा।

क्रिया का सिद्धांत

बच्चे स्वभाव से ही क्रियाशील होते हैं। छोटी कक्षाओं में तो बालक खेलकूद तथा क्रियात्मक पढ़ाई में बहुत ही अधिक रुचि रखते हैं। जितनी छोटी आयु हो बच्चा उतना ही क्रियाशीलता में अधिक रुचि लेता है। अत: गणित के जिन अंगों में क्रिया का अंश अधिक है, वे छोटी कक्षाओं में पढ़ाने के लिए रखने चाहिए। धीरे-धीरे बड़ी कक्षाओं में क्रियात्मक कार्य की मात्रा कम की जा सकती है, क्योंकि तब विद्यार्थी काल्पनिक एवं सैद्धांतिक तथ्यों को समझने लगते हैं। परंतु किसी भी स्तर पर हाईस्कूल कक्षाओं में क्रियात्मक कार्य की बिलकुल अवहेलना नहीं होनी चाहिए। प्रकरण के प्रारंभिक अंशों में क्रियात्मक कार्य को अवश्य ही स्थान दिया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को मूर्त-सामग्री (Concrete Material) तथा अन्य वास्तविक सहायक सामग्री के उपयोग करने के अवसर अधिक-से-अधिक देने का प्रयत्न भी किया जाना चाहिए तथा विद्यार्थी क्रियात्मक कार्य द्वारा खेल-खेल में ही उपयोगी ज्ञान प्राप्त कर सकें इसका भी विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। विद्यार्थियों को परकार और पटरी का प्रयोग न करने देकर एक मूकदर्शक की भाँति रेखागणित संबंधी आकृतियों का ज्ञान कराने में कोई तर्क नहीं है। इसी प्रकार अगर बच्चों को 20 बार यह रटाया जाए कि त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है, परंतु उन्हें वास्तविक रूप में कोणों को नापकर यह मालूम कराने का प्रयत्न न कराया जाए तो उनका ज्ञान निरर्थक ही है।

कठिनाई का सिद्धांत

पाठ्यक्रम की व्यवस्था विद्यार्थियों की आयु, श्रेणी, उनके मानसिक विकास तथा सामर्थ्य के अनुसार होनी चाहिए। इसमें केवल वे प्रकरण ही रखने चाहिए जिन्हें कि विद्यार्थी सुविधा से समझ

सकें। प्राय: यह देखा गया है कि कुछ प्रकरण आगामी जीवन के लिए उपयोगी तो बहुत होते हैं, परंतु बालक उन्हें सरलता से नहीं समझ सकते। इसलिए उन्हें पाठ्यक्रम में स्थान नहीं देना चाहिए। जब बालक बड़ी कक्षाओं में पहुँच जाएँगे तब वे उनका अध्ययन कर लेंगे। उदाहरण के लिए, भूमि का सर्वेक्षण (Surveying) औरों के लिए तो क्या साधारण-से-साधारण किसान के लिए भी कितना महत्त्वपूर्ण है! परंतु क्या इसे प्राइमरी कक्षाओं के पाठ्यक्रम में पूर्ण रूप से सम्मिलित किया जा सकता है? उसी प्रकार मध्यमान औसत, देखने में तो सुगम है, केवल कुछ राशियों को जोड़कर प्राप्त योगफल को उन राशियों की संख्या से भाग ही करना है, परंतु क्या छोटे स्तर पर बच्चे इसकी उपयोगिता तथा इसमें निहित सिद्धांत को समझ सकते हैं? प्रकरण की कठिनता बालक के दृष्टिकोण से देखनी चाहिए। जो प्रकरण अध्यापक आसान समझते हैं वे बालकों के लिए बहुत कठिन हो सकते हैं। गणित की किसी भी कक्षा का पाठ्यक्रम बनाने के लिए आसान प्रकरण को पहले और कठिन प्रकरणों को उनके बाद में रखना चाहिए। इस प्रकार सब प्रकरणों को उनकी बढ़ती हुई कठिनाई के क्रम में रखा जाना चाहिए।

प्राकरणिक क्रम तथा प्राकरणिक अंश के क्रम का सिद्धांत

प्राकरणिक क्रम के अनुसार पाठ्यक्रम में शामिल करने योग्य सभी सामग्री को प्रकरणों में बाँट दिया जाता है और फिर इन प्रकरणों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लिए निश्चित कर देते हैं। जिन प्रकरणों (Topics) को जिन श्रेणियों में प्रारंभ किया जाता है उन्हें उस श्रेणी में पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाता है। वे फिर अगली श्रेणी में नहीं पढ़ाए जाते। जैसे अगर दूसरी श्रेणी में जोड़ और घटा कराने हैं तो सभी प्रकार के जोड़ और घटा सादा अंकों के, रुपये-पैसे, किलोमीटर-मीटर, किलोग्राम-ग्राम, लीटर-मिलीलीटर, इत्यादि दूसरी में ही शुरू किए जाएँगे और पूरी तरह से पढ़ाए जाएँगे तथा फिर आगे की कक्षाओं में किसी भी प्रकार के जोड़ अथवा घटाने के प्रश्न नहीं कराए जाएँगे। इस सिद्धांत के आधार पर पाठ्यक्रम का आयोजन न करने के निम्न कारण दिए जा सकते हैं :

(i) इस सिद्धांत के अनुसार प्रकरणों का आयोजन करने पर सरल प्रकरण पहले लिए जा सकते हैं और कठिन बाद में। परंतु एक प्रकरण के सभी अंश दूसरे प्रकरणों के सभी अंशों से सदैव सरल हों ऐसी कोई बात नहीं। एक प्रकरण के कुछ अंश सरल होते हैं तथा कुछ कठिन। अतएव संपूर्ण प्रकरण को एक साथ, एक श्रेणी में नहीं पढ़ाया जा सकता। उदाहरण के रूप में, अगर क्षेत्रफल पढ़ाना चौथी या पाँचवीं कक्षा में शुरू करें तो हम क्षेत्रफल के सभी अंगों—वर्ग, आयत, त्रिभुज तथा वृत्त आदि सभी आकृतियों के क्षेत्रफलों का ज्ञान इसी कक्षा में नहीं करा सकते।

(ii) दूसरे इस प्रकार हम बच्चों को केंद्र मानकर भी पाठ्यक्रम आयोजित नहीं कर सकते।

(iii) इस सिद्धांत के अनुसार जो प्रकरण पहले पढ़ा दिए जाते हैं उन्हें पुन: नहीं पढ़ाया जाता है अत: पहले की कक्षाओं में पढ़े हुए प्रकरणों की बातें अधिकतर भूल जाती हैं जिससे बालकों को अगली कक्षाओं में अन्य प्रकरणों का ज्ञान कराने में बहुत ही असुविधा हो जाती है।

इन सभी दोषों को प्राकरणिक अंश के सिद्धांत का पालन करके दूर किया जा सकता है। इसमें प्रकरणों को उचित अंशों में बच्चों के मानसिक विकास तथा सामर्थ्य के अनुसार बढ़ती हुई कठिनाई के आधार पर विभक्त कर लिया जाता है। प्रारंभिक कक्षाओं में जो प्रकरण पढ़ाने शुरू किए जाते हैं, उनको पूर्णरूपेण पढ़ाकर उन्हीं कक्षाओं में समाप्त नहीं कर दिया जाता, बल्कि उन प्रकरणों के प्रारंभिक अंशों का अध्ययन ही इन छोटी कक्षाओं में किया जाता है। धीरे-धीरे श्रेणियों के ऊँचे होने के साथ-साथ इन प्रकरणों के शेष अंश विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पढ़ाए जाते हैं

उदाहरणतया, जोड़ किसी एक श्रेणी में नहीं पढ़ाकर विभिन्न श्रेणियों में उसके सभी अंश बाँट दिए जाते हैं। पहली श्रेणी में छोटी-छोटी संख्याओं का जोड़, दूसरी में बड़ी संख्याओं का जोड़, तीसरी में सरल मिश्रित जोड़ तथा चौथी में कठिन मिश्रित जोड़ सिखलाया जाता है।

आयोजित तथा प्रासंगिक पढ़ाई का सिद्धांत

आयोजित पढ़ाई में विषय का क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित तथा औपचारिक (Formal) ढंग से ज्ञान कराया जाता है। प्रत्येक विषय की निश्चित घंटी होती है तथा जिन प्रकरणों को पढ़ाना है, उनके पढ़ाने के ढंग तथा क्रम इत्यादि सभी की एक निश्चित योजना होती है।

इसके विपरीत प्रासंगिक पढ़ाई औपचारिक ढंग से क्रमबद्ध एवं नियमित रूप में नहीं की जाती। इसमें न कोई किसी विषय को पढ़ाने की नियमित घंटी होती है और न कोई प्रकरणों को पढ़ाने की निश्चित योजना। कोई भी क्रियात्मक कार्य करने में जब किसी ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है तो उसकी शिक्षा उसी समय दे दी जाती है, चाहे वह ज्ञान का प्रसंग किसी विषय से संबंधित क्यों न हो? गणित के ज्ञान को इस प्रकार प्राप्त करने को प्रासंगिक ढंग कहा जाता है। योजना विधि प्रासंगिक पढ़ाई का एक अच्छा उदाहरण है। उदाहरण के लिए स्कूल में 'फूलदार पौधे' लगाने की योजना को ही लें। भूमि का निरीक्षण करके मापने तथा मापकर इच्छानुसार आकृति की क्यारियाँ बनाने, क्यारियों में काम करने, क्यारियों को बाँटने, विद्यार्थियों को कार्यक्षमता की जाँच करने, पौध, कलम तथा बीज और खाद इत्यादि खरीदने, चारों तरफ कँटीले तार लगाने, फूलों को बेचने इत्यादि कार्यों में गणित के बहुत से प्रकरणों के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। अत: इनके ज्ञान को आवश्यकतानुसार दिया जा सकता है। प्रासंगिक पढ़ाई जहाँ मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक ढंग से बहुत उपयोगी है, वहाँ इसमें निम्न दोष भी हैं :

(i) इसके द्वारा ज्ञान क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित रूप में नहीं दिया जा सकता। पढ़ाई में बहुत सी बातें छूट जाती हैं।

(ii) कठिनाई के सिद्धांत का पालन नहीं हो सकता। सरल अंश बाद में तथा कठिन पहले आ जाते हैं।

(iii) इस विधि द्वारा कोई नई बातें नहीं सिखाई जा सकती, केवल सीखी हुई बातों का अभ्यास ही हो सकता है।

इस तरह पाठ्यक्रम के आयोजन का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। परंतु हम इस बात को भी नहीं भुला सकते कि इस विधि द्वारा ज्ञान आसानी से प्राप्त किया जा सकता है तथा क्रियात्मक ढंग से आवश्यकतानुसार ज्ञान प्राप्त करना इस विधि द्वारा ही संभव है। अत: हम प्रासंगिक पढ़ाई को बिलकुल अनुपयोगी नहीं ठहरा सकते।

हमें अपने पाठ्यक्रम में आयोजित तथा प्रासंगिक दोनों को ही इस तरह स्थान देना चाहिए जिससे कि दोनों के दोष दूर हो सकें। इसके लिए पाठ्यक्रम में आयोजित पढ़ाई को ही प्रधानता देनी चाहिए परंतु प्रासंगिक पढ़ाई के अवसर भी रखने चाहिए। कई क्रियाएँ तथा योजनाओं को पाठ्यक्रम में रखना चाहिए जिनके द्वारा गणित के विभिन्न प्रकरणों को ठीक प्रकार समझने तथा गणित का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में भी सहायता मिले तथा छात्रों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सके।

समवाय का सिद्धांत

गणित संबंधी समवाय को ध्यान में रखते हुए गणित के सभी भागों को एकता के सूत्र में आबद्ध

करके एक ओर तो पाठ्यक्रम के अन्य सभी विषयों से तथा दूसरी ओर जीवन की क्रियाओं से संबंधित किया जा सकता है। गणित में निम्न पाँच प्रकार का समवाय होता है :

(*i*) गणित का जीवन के साथ समवाय।
(*ii*) गणित का पाठ्यक्रम के अन्य विषयों से समवाय।
(*iii*) गणित की भिन्न-भिन्न शाखाओं का पारस्परिक समवाय।
(*iv*) गणित की एक ही शाखा के विभिन्न प्रकरणों का पारस्परिक समवाय।
(*v*) गणित का कार्य-अनुभवों के साथ समवाय।

इन पाँचों प्रकार के समवाय को ध्यान में रखते हुए पाठ्य सामग्री का आयोजन करना चाहिए। मनोवैज्ञानिक और शिक्षा के दृष्टिकोण से यह क्रम सबसे अच्छा है। इस सिद्धांत के अनुसार पाठ्यक्रम का आयोजन करने में निम्न बातों का ध्यान रखना पड़ता है :

(*i*) विद्यार्थी किस प्रकार के सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण में रह रहे हैं ?
(*ii*) दैनिक जीवन में गणित का प्रयोग कहाँ और कैसे करते हैं ?
(*iii*) किसी भी श्रेणी में अन्य विषयों के अध्ययन के लिए किस प्रकार के गणित संबंधी ज्ञान की उन्हें आवश्यकता होती है तथा उन विषयों के ज्ञान का किस प्रकार गणित से समवाय किया जा सकता है ?
(*iv*) छात्रों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ क्या-क्या हैं ?
(*v*) किस-किस कार्य-अनुभव की कौन सी क्रियाएँ बच्चे किस श्रेणी में करेंगे ?
(*vi*) गणित के कौन-कौन से अंग तथा अंगों में से कौन से प्रकरण किस-किस श्रेणी में पढ़ाने हैं ?
(*vii*) इस प्रकार के क्रम में पाठ्यक्रम थोड़ा-बहुत लचकदार भी रखा जाना चाहिए जिसे आवश्यकतानुसार उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन भी किया जा सके।

व्यक्तिगत एवं सामूहिक पढ़ाई का सिद्धांत

पाठ्यक्रम का आयोजन सामूहिक पढ़ाई के लिए किया जाता रहा है। इसमें सभी प्रकार के विद्यार्थियों के लिए एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम रखा जाता है तथा उन्हें सामूहिक रूप से शिक्षा दी जाती है। इस तरह व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समूह के लिए बलि चढ़ा दिया जाता है। यह दृष्टिकोण दोषपूर्ण है, क्योंकि यह सभी जानते हैं कि प्रत्येक बच्चा अपने आप में एक अलग ही विशेषता रखता है। कुछ बच्चे देखकर, कुछ सुनकर तथा कुछ क्रियात्मक कार्य के द्वारा भलीभाँति ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सभी की शारीरिक तथा मानसिक योग्यताएँ रुचियाँ तथा चेष्टाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। किसी बच्चे की समझने और नई बातों को सीखने की गति राकेट की तरह होती है तो कोई मालगाड़ी की चाल से ही आगे बढ़ पाता है। अत: हम सबको एक जुए में नहीं हाँक सकते। पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए कि वह सभी की मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके। परंतु इससे यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अलग-अलग पाठ्यक्रम हो। यह तो व्यावहारिक हो ही नहीं सकता। हाँ, होनहार बालकों को जितना ऊँचा वह बढ़ सकें, बढ़ने में तथा मंदबुद्धि बालकों को अपनी स्वाभाविक गति के साथ चलने में जिस प्रकार से भी हो, उचित निर्देशन तथा उत्साहवर्धन करना पाठ्यक्रम का उद्देश्य अवश्य होना चाहिए।

वास्तव में अगर हम व्यक्तिगत एवं सामूहिक पढ़ाई के बीच का मार्ग चुनें तो अधिक उपयुक्त होगा। प्रत्येक श्रेणी के बच्चों को इस प्रकार के छोटे-छोटे समूहों में बाँटा जाए कि समूह के अंदर उनकी

योग्यताओं तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं में करीब-करीब समानता रहे। इस प्रकार के छोटे-छोटे समूहों में वर्गीकरण को ध्यान में रखकर अगर पाठ्यक्रम का आयोजन किया जाए तो उससे व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही हितों की रक्षा हो सकती है। इसके अंदर भिन्न-भिन्न स्तर की योजनाएँ, समस्याएँ तथा क्रियात्मक कार्य रखे जा सकते हैं तथा इसके साथ-साथ ही कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थियों के लिए व्यक्तिगत और स्वंय कार्य करने का अवसर भी दिया जा सकता है।

(C) समुचित अधिगम अनुभव सुझाना (Suggesting Appropriate Learning Experiences)

पाठ्यक्रम निर्माण की दिशा में प्राप्य उद्देश्यों को निश्चित कर लेने और जो कुछ गणित में विषय सामग्री और प्रकरणों के रूप में पढ़ाया जाता है, उसका चयन और आयोजन कर लेने के पश्चात तीसरा मुख्य चरण उचित अधिगम अनुभवों का लेखन (listing) है।

अधिगम अनुभवों का स्वरूप क्या हो इसका निर्णय समुदाय विशेष भी आवश्यकताओं, विद्यार्थियों की रुचि तथा योग्यताओं और विद्यालय में प्राप्त सुविधाओं के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। अधिगम अनुभवों का चयन इस तरह का होना चाहिए कि उनके द्वारा विषय वस्तु एवं प्रकरणों की मूलधारा से जुड़ते हुए गणित शिक्षण के प्राप्य उद्देश्यों की अच्छी तरह से प्राप्ति हो सके। अधिगम अनुभवों की समुचितता की परख के लिए निम्न बातों को आधार बना लेना उपयुक्त सिद्ध हो सकता है :

1. प्राप्य उद्देश्यों को लक्ष्य बनाकर व्यवहार में जो अपेक्षित परिवर्तन लाने हैं, अधिगम अनुभव उन्हीं के अनुकूल होने चाहिए।

2. अधिगम अनुभव विषय विशेष की पाठ्य वस्तु एवं प्रकरणों को ध्यान में रखकर चुने जाने चाहिए।

3. अधिगम अनुभव ऐसे होने चाहिए जिन्हें सुविधापूर्वक प्रदान किया जा सके।

4. अधिगम अनुभव अपने आप में पूर्ण, सक्षम और प्रभावशाली होने चाहिए।

(D) मूल्यांकन की उचित विधियाँ एवं तकनीक सुझाना (Suggesting Suitable Methods and Techniques of Evaluation)

प्राप्य उद्देश्य, पाठ्यक्रम और मूल्यांकन ये तीनों शिक्षा प्रक्रिया की मुख्य धुरी हैं जो मिलकर अध्ययन और अध्यापन के लक्ष्य को पूरा करते हैं। जो शिक्षा के द्वारा हम करना चाहते हैं उसे प्राप्य उद्देश्यों के रूप में ये नियत करते हैं तथा पाठ्यक्रम अर्थात विषयवस्तु, प्रकरण एवं अधिगम अनुभवों की सहायता से उन्हें प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। हम अपने कार्य में किस सीमा तक सफल हो रहे हैं इसका ज्ञान मूल्यांकन द्वारा होता है। मूल्यांकन जो कुछ पढ़ा-पढ़ाया जाता है उसके बाहर नहीं जा सकता अर्थात पाठ्यक्रम को आधार मानकर ही मूल्यांकन तकनीकों की रचना हो सकती है। मूल्यांकन से अभिन्न रूप से जुड़े रहने के कारण पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय निर्माणकर्ता को मूल्यांकन तकनीकों से संबंधित सिद्धांतों और आवश्यक बातों पर ध्यान देना चाहिए। गणित के एक अच्छे पाठ्यक्रम में मूल्यांकन संबंधी आवश्यक निर्देश एवं सामग्री का समावेश भी इस दृष्टि से होना आवश्यक है ताकि गणित अध्यापक को विषय को पढ़ाते हुए अपने विद्यार्थियों और स्वयं अपने अध्यापन का समय-समय पर मूल्यांकन करते रहने में आवश्यक सहायता मिल सके।

विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक विधियाँ
(Analytic and Synthetic Methods)

विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक गणित शिक्षण की दो ऐसी मुख्य विधियाँ हैं जिनकी प्रक्रिया एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत होते हुए भी उन्हें एक साथ काम में लाया जाता है। यह समझने के लिए अगर इन दोनों विधियों का तुलनात्मक अध्ययन करके ही कुछ परिणाम निकाला जाए तो अधिक उपयुक्त रहेगा।

विश्लेषणात्मक विधि

विश्लेषणात्मक (Analytic) शब्द विश्लेषण (Analysis) से बना है अर्थात विश्लेषणात्मक विधि वह विधि है जो विश्लेषण प्रक्रिया पर आधारित है। विश्लेषण (Analysis) का शब्दकोशीय अर्थ है 'इकट्ठी हुई वस्तुओं अथवा भागों को अलग-अलग करने की प्रक्रिया।' इस तरह से विश्लेषणात्मक विधि उस विधि को कह सकते हैं जिसमें हम किसी भी समस्या की तह तक पहुँचने और उसे सुविधापूर्वक हल करने के दृष्टिकोण से छोटे-छोटे भागों में विभक्त करते जाते हैं और इस तरह से अज्ञात (Unknown) का रहस्य खोलते-खोलते ज्ञात (Known) तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। समस्या में जो कुछ ज्ञात करना होता है अथवा सिद्ध करना होता है उससे आरंभ करते हैं कि यह सिद्ध करने अथवा ज्ञात करने के लिए हमें पहले क्या ज्ञात अथवा सिद्ध कर लेना चाहिए और इस तरह पता लगाते-लगाते जो कुछ दिया होता है, उस तक पहुँच जाते हैं। उदाहरण के रूप में, अगर हमें यह दिया हुआ है कि इस तथ्य 'A' सत्य है और हमें सिद्ध करना है कि तथ्य 'C' भी सत्य होगा तो विश्लेषण विधि के अनुसार निम्न प्रकार से तर्क करना होगा :

पूछे जाने वाले प्रश्न	संभावित उत्तर (Expected Answers)
(*i*) हमें क्या सिद्ध करना है ?	तथ्य 'C' सत्य सिद्ध करना है।
(*ii*) तथ्य 'C' को सत्य सिद्ध कैसे किया जा सकता है ?	अगर हमें यह ज्ञात हो कि तथ्य 'B' ठीक है।
(*iii*) तथ्य 'B' की सत्यता कैसे सिद्ध की जा सकती है ?	यदि हमें यह ज्ञात हो कि तथ्य 'A' ठीक है।
(*iv*) हमें क्या ज्ञात है ?	यह ज्ञात है कि तथ्य 'A' सत्य है।

इस प्रकार क्या ज्ञात करना है, इस समस्या को तोड़ते हुए जो कुछ दिया होता है, हम उस तक पहुँच जाते हैं।

संश्लेषणात्मक विधि

यह विधि विश्लेषण विधि से बिलकुल विपरीत है। संश्लेषणात्मक विधि संश्लेषण प्रक्रिया पर आधारित है। संश्लेषण (Synthesis) का शब्दकोषीय अर्थ है 'अलग-अलग वस्तुओं अथवा भागों को

इकट्ठा करने की प्रक्रिया'। इस तरह से संश्लेषण विधि उस विधि को कह सकते हैं जिसमें हम किसी भी समस्या को हल करने के लिए उस समस्या से संबंधित सभी पूर्व सूचनाओं को एक साथ मिलाकर समस्या को हल करने का प्रयत्न करते हैं। इस विधि में जो कुछ ज्ञात है अथवा दिया हुआ है उससे अपना तर्क प्रारंभ करके जो कुछ ज्ञात करना है अथवा सिद्ध करना है उस तक पहुँचा जाता है। रेखागणित में जब हमें इस विधि द्वारा कोई प्रमेय सिद्ध करनी होती है तब हम दिए हुए (Given) से चलकर अनुमान (Hypothesis) के आधार पर निष्कर्ष (Conclusion) पर पहुँचते हैं। उदाहरण के रूप में, जैसे हमें यह ज्ञात है कि 'A' सत्य है और यह सिद्ध करना है कि तथ्य 'C' सत्य है तो हम दिए हुए तथ्य 'A' से आरंभ करेंगे जब 'A' सत्य है तो तथ्य 'B' सत्य होगा। अतः तथ्य 'C' भी सत्य होगा। इस तरह से जो ज्ञात है उससे आरंभ करके पूर्वज्ञान और पहले से ही खोजे गए अनुमानों का सहारा लेकर हम अज्ञात तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं।

विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक विधियों की तुलना
(Comparative Study of Analytic and Synthetic Methods)

विश्लेषणात्मक विधि	संश्लेषणात्मक विधि
(1) इस विधि में हम अज्ञात या अभीष्ट से प्रारंभ करके ज्ञात या दिए हुए तथ्यों पर आते हैं।	इस विधि में हम ज्ञात तथ्यों से अज्ञात या अभीष्ट पर आते हैं।
(2) इसमें समस्या की तह तक पहुँचने और हल करने की सुविधा से उसे छोटे-छोटे भागों में विभक्त करते जाते हैं।	इसमें पहले से ज्ञात विभिन्न तथ्यों को इकट्ठा करके परिणाम पर पहुँचा जाता है।
(3) यह विधि ज्ञान की खोज करने की विधि है। इसमें विद्यार्थियों को एक सुनिश्चित विचार प्रकिया (Thought Process) द्वारा समस्या का हल खोजना होता है।	यह विश्लेषण विधि की विचार प्रक्रिया का परिणाम और निष्कर्ष मात्र है अर्थात यह खोजे हुए ज्ञान को सुंदर और संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की विधि है।
(4) विश्लेषण विधि में क्रिया का प्रत्येक पद विधिवत (Methodical) और तर्कयुक्त (Logical) होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अगला पद (Step) अपने पहले पद से शृंखलाबद्ध (Linked) भी रहता है।	इस विधि में क्रिया के पद तर्क (Logic) पर आधारित न होकर किसी विशेष युक्ति (Special Device) द्वारा प्राप्त होते हैं और कोई पद क्यों ऐसा लिखा गया इसके बारे में कोई कारण विद्यार्थी नहीं जान पाते।
(5) इस विधि में स्मरण शक्ति (Memory) के ऊपर आश्रित नहीं रहना पड़ता। संपूर्ण क्रिया विद्यार्थियों के अपने तर्कयुक्त विचारों पर आधारित होती है, किसी विशेष युक्ति और रटे हुए ज्ञान पर नहीं।	इस विधि में संपूर्ण क्रिया, प्रयुक्त युक्ति (Special Device) और प्रत्येक पद को याद रखना पड़ता है, जिसे भूल जाने पर पुन: स्मरण करना कठिन तथा एक तरह से असंभव ही होता है।
(6) इस विधि के द्वारा विद्यार्थियों को विषय का सूक्ष्म अध्ययन करने का अवसर मिलता है।	इस विधि में विद्यार्थी समस्याओं की गहराई तक नहीं पहुँच पाते। कुछ बातों को रटने से ही उनका काम चल जाता है। इस तरह इस विधि में उन्हें विषय का केवल उथला ज्ञान ही हो पाता है।
(7) इस विधि में विद्यार्थियों को अपनी मानसिक शक्तियों का उपयोग करने का पूर्ण अवसर मिलता है। अत: उनकी तर्क शक्ति और विचार शक्ति, कल्पना शक्ति	यह विधि विद्यार्थियों को केवल रटने का गुलाम बनाती है, उनकी मानसिक शक्तियों के विकास का कोई अवसर नहीं होती।

और विवेक शक्ति का विकास करने में यह विधि बहुत लाभदायक है।

(8) इस विधि के प्रयोग से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।

(9) इस विधि के प्रयोग से विद्यार्थियों को मौलिक विचार (Original ideas) प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है।

(10) इस विधि में विद्यार्थी अपनी शक्तियों पर निर्भर रहकर स्वयं के परिश्रम द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं जिससे उनमें आत्म निर्भरता तथा आत्म विश्वास का संचार होता है।

(11) इस विधि में विद्यार्थियों को सक्रिय रूप से भाग लेना पड़ता है, इसलिए वे पाठ में अधिक रुचि लेते हैं।

(12) यह विधि अध्यापक और विद्यार्थी दोनों के संबंध प्रगाढ़ होने के अवसर प्रदान करती है।

(13) यह मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित एक मनोवैज्ञानिक विधि है।

(14) यह विधि अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है और इसमें आगमन विचार प्रक्रिया का प्रयोग होता है।

(15) यह एक लंबी विधि है, जिसमें परिश्रम और समय की आवश्यकता होती है।

(16) इस विधि के द्वारा हम समस्याओं को शीघ्रता और स्वच्छता से हल करना नहीं सीख सकते।

(17) विश्लेषण विधि हमें किसी समस्या का हल अथवा किसी साध्य की उपपत्ति के बारे में आवश्यक खोज कराने में सहायक होती है, परंतु खोज के बाद का कार्य करने में यह चुप हो जाती है।

इस विधि के प्रयोग से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने में बाधा पड़ती है।

इस विधि के प्रयोग से विद्यार्थियों को मौलिक विचार प्रस्तुत करने का अवसर नहीं मिलता। वे केवल दूसरों के विचार को दोहराना सीखते हैं।

इस विधि में विद्यार्थियों को समस्याओं का हल अपने आप खोज निकालने का अवसर नहीं दिया जाता जिससे उनमें आत्म निर्भरता और आत्म विश्वास की बहुत कमी रहती है।

इस विधि के प्रयोग में अध्यापक ही अधिक क्रियाशील रहता है। विद्यार्थी मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार से निष्क्रिय रहते हैं।

इस विधि के द्वारा विद्यार्थियों और अध्यापक में अधिक संपर्क नहीं हो पाता।

यह मनोविज्ञान के नियमों के प्रतिकूल तार्किक क्रम (Logical Order) की विधि है।

इस विधि में अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण नहीं रख जाता और इसमें निगमन विचार प्रक्रिया का उपयो किया जाता है।

यह एक संक्षिप्त विधि है। इसमें थोड़े से समय तथ परिश्रम से काम चल जाता है।

समस्याओं को शीघ्रता और स्पष्टता से हल करने की यह उपयुक्त विधि है।

संश्लेषण विधि विश्लेषण के बाद के कार्य को पू करती है। इसके द्वारा हम विश्लेषण से प्राप्त परिणामों का प्रयोग करके समस्या को सुव्यवस्थि ढंग से हल करते हैं।

आगमन-निगमन विधि
(Inductive-Deductive Method)

यह विधि दो पृथक-पृथक विधि आगमन तथा निगमन विधियों का ऐसा समन्वय है जिसमें दोनों के दोषों को समाप्त करके उन्हें उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस विधि को अच्छी तरह समझने के लिए पहले इन दोनों विधियों को अलग-अलग समझना आवश्यक है।

आगमन विधि
(Inductive Method)

इस विधि में प्रत्यक्ष अनुभवों, उदाहरणों तथा प्रयोगों का भलीभाँति अध्ययन करके नियम निकाले जाते हैं। इनमें किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए पहले से ज्ञात तथ्य अथवा नियम का सहारा नहीं लिया जाता, बल्कि पूर्व ज्ञान के आधार पर उचित सूझ-बूझ और तर्क शक्ति की सहायता से आगे बढ़ा जाता है। एक ही प्रकार की समस्याओं को लेकर उनका अध्ययन किया जाता है। सभी समस्याओं के हल, कार्यप्रणाली तथा परिणाम का उचित अध्ययन करके फिर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है तथा नियम निकाले जाते हैं। इस प्रकार इस विधि में प्रत्यक्ष से प्रमाण की ओर उदाहरणों से नियम की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर तथा विशेष से सामान्य की ओर बढ़ते हैं। तथ्यों का गंभीर अध्ययन करके उनके परिणामों का विश्लेषण करके ही नियम बनाए जाते हैं। जब नियम अथवा सूत्र बन जाता है तो अन्य प्रश्नों को हल करने में इसकी सीधी सहायता ली जाती है। निम्न उदाहरणों के द्वारा इसी विधि को भलीभाँति समझा जा सकता है।

निगमन विधि (Deductive Method)

यह आगमन विधि से बिलकुल विपरीत है। इस विधि में विद्यार्थियों को पहले ही पूर्व अनुभवों, प्रयोगों तथा उदाहरणों द्वारा बने हुए नियम तथा सूत्र बतला दिए जाते हैं। विद्यार्थी स्वयं इन नियमों तथा सूत्रों की रचना नहीं करते। इन नियमों तथा सूत्रों को विद्यार्थियों को याद करा दिया जाता है। इनके आधार पर कुछ प्रश्नों को हल करके दिखलाया जाता है और उसके बाद उसी प्रकार के प्रश्न विद्यार्थियों को हल करने के लिए दे दिए जाते हैं। यह विधि सामान्य से विशेष की ओर, नियम से उदाहरण की ओर, तथा सूक्ष्म से स्थूल की ओर चलती है। यह विधि केवल पहले से ही आगमन विधि द्वारा ज्ञात किए हुए नियम तथा सूत्रों को परखने की विधि है। गणित पढ़ाने की यह कोई स्वतंत्र विधि नहीं है।

निम्न उदाहरण इस विधि पर प्रकाश डाल सकते हैं :

(i) बच्चा जब पूछता है कि उसके भाई को इस प्रकार रोते हुए क्यों उठाकर ले गए थे, तब उसे बता दिया जाता है कि उसकी मृत्यु हो गई थी तथा हम सभी की मृत्यु एक न एक दिन अवश्य होगी। उसके बाद जब उसके पड़ोसी तथा मित्र की भृत्यु हो जाती है तो उसे यह नियम कि मनुष्य नश्वर है, सार्थक जान पड़ता है।

(ii) बच्चे को पहले ही बता दिया जाता है कि हरे रंग के सेब खट्टे होते हैं। जब वह दो-चार हरे रंग के सेब चखकर देखता है तो उसे स्पष्ट हो जाता है कि यह नियम ठीक है।

(iii) उन्हें पहाड़े याद करा दिए जाते हैं तथा फिर उनसे उन पहाड़ों की सहायता से प्रश्न हल करने को कहा जाता है। जैसे अगर एक ढेरी में 4 गोलियाँ हों तो 5, 7 और 9 ढेरियों में कितनी गोलियाँ होंगी? विद्यार्थी याद किए हुए पहाड़े के द्वारा उत्तर दे देते हैं।

(iv) विद्यार्थियों को पहले ही बता दिया जाता है कि त्रिभुज के तीनों कोणों का योग 180° के बराबर होता है। विद्यार्थी तरह-तरह के त्रिभुजों को मापकर इसकी सत्यता की जाँच कर सकते हैं।

आगमन तथा निगमन विधियों की तुलना
(Comparative Study of Inductive Methods and Deductive Methods)

आगमन विधि (Inductive Method)	निगमन विधि (Deductive Method)
(1) इसमें 'विशेष से सामान्य की ओर' तथा 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' ये दो प्रमुख शिक्षण-सूत्र प्रयोग में लाए जाते हैं।	इसके विपरीत इसमें 'सामान्य से विशेष की ओर' तथा 'सूक्ष्म से स्थूल की ओर' आगे बढ़ते हैं, जो कि शिक्षा के नियमों के प्रतिकूल है।
(2) इसमें बालक स्वयं ही अपने परिश्रम के आधार पर नियम अथवा सूत्रों की खोज करते हैं।	इसमें नियम पहले ही बता दिए जाते हैं। वे फिर उदाहरणों द्वारा उनकी पुष्टि करते हैं।
(3) क्योंकि बालक स्वयं नियम बनाते हैं, इससे उनमें आत्म विश्वास बढ़ता है तथा वे आनंद का अनुभव करते हैं।	नियम के लिए दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है। इसलिए न तो उनमें आत्म-विश्वास ही रहता है और न उन्हें आनंद की प्राप्ति ही होती है।
(4) यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है। इसमें बच्चों की योग्यता, रुचि और उनकी कठिनाइयों इत्यादि का सदैव ध्यान रखा जाता है।	यह मनोवैज्ञानिक विधि नहीं है। इसमें बच्चों की रुचि तथा उनके मानसिक स्तर पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।
(5) यह रटने की प्रवृत्ति को जन्म नहीं देती। इसमें स्मरण शक्ति पर आश्रित नहीं रहना पड़ता। नियम भूल जाने पर विद्यार्थी स्वयं उसकी खोज कर सकते हैं।	यह रटने की प्रवृत्ति को जन्म देती है। उन्हें अपनी स्मरण शक्ति की कृपा पर ही रहना पड़ता है। नियम भूल जाने पर प्राय: उसे फिर से याद कर पाना असंभव-सा ही होता है।
(6) यह एक वैज्ञानिक विधि है। इसके द्वारा विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की वृद्धि होती है।	इसके द्वारा विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिक ढंग से कार्य करने की आदत नहीं पड़ती।
(7) यह छोटे बच्चों के लिए अधिक उपयोगी तथा रोचक है।	यह बड़े विद्यार्थियों के लिए उत्तम है।
(8) इसमें अनुभवों, प्रयोगों तथा क्रियात्मक कार्यों द्वारा ज्ञान प्राप्ति पर जोर दिया जाता है।	इसमें क्रियात्मक तथा प्रयोगात्मक कार्य का अभाव रहता है।
(9) इसमें अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही पाठ में सक्रिय भाग लेते हैं।	इसमें अध्यापक ही अधिक क्रियाशील होते हैं। विद्यार्थी तो केवल मूक श्रोता ही होते हैं।
(10) यह शिक्षण की एक श्रेष्ठ विधि है। इससे बालकों की भिन्न-भिन्न मानसिक शक्तियों का अच्छी तरह विकास हो जाता है।	इसमें बालकों को नियम तथा तथ्यों की सूचनाएँ मिलती हैं। मानसिक शक्तियों का विकास नहीं होता।

(11) इसके द्वारा बालकों को नवीन ज्ञान की खोज करने का अवसर मिलता है।	इसमें बालकों को दूसरों के द्वारा दिए हुए ज्ञान को प्रयोग में लाने का अवसर मिलता है।
(12) यह अनुसंधान का मार्ग है।	यह अनुकरण का मार्ग है।
(13) इस विधि द्वारा प्रश्न हल करने में बहुत समय की आवश्यकता होती है।	इस विधि में कम समय में ही अधिक ज्ञान दिया जा सकता है।
(14) इसमें विद्यार्थी और अध्यापक दोनों को ही अधिक परिश्रम करना पड़ता है।	इसमें विद्यार्थी और अध्यापक दोनों को ही कम परिश्रम करना पड़ता है।
(15) छोटी कक्षाओं तथा किसी भी पाठ के प्रारंभिक अंशों को पढ़ाने के लिए यह विधि उपयुक्त है, परंतु बड़ी कक्षाओं तथा पाठ के अन्य अंशों को पढ़ाने के लिए नहीं।	बड़ी कक्षाओं तथा किसी प्रकरण के कठिन अंशों को पढ़ाने के लिए यह विधि अधिक उपयुक्त है।
(16) इस विधि में विद्यार्थियों पर व्यक्तिगत ध्यान देने की आवश्यकता होती है जो कि आजकल की कक्षा पद्धति में संभव नहीं है।	यह विधि कक्षा पद्धति (Class Teaching) में आसानी से प्रयोग में लाई जा सकती है। इसके द्वारा बड़ी कक्षा को भी आसानी से पढ़ाया जा सकता है।

अनुसंधान विधि
(Heuristic Method)

गणित पढ़ने की यह एक उपयोगी विधि है। इस विधि को प्रोफेसर एच.ई. आर्मस्ट्राँग ने जन्म दि
था। इसे 'खोज विधि' या 'स्वयं ज्ञान विधि' के नाम से भी जाना जाता है। जैसा कि विधि के नाम
स्पष्ट है, इस विधि में बालक एक खोजी के रूप में कार्य करता है। अध्यापक द्वारा किसी तरह का
बच्चों के ऊपर लादा नहीं जाता, वरन विद्यार्थियों को स्वयं प्राप्त करने को प्रेरित किया जाता है।
आवश्यकता पड़ने पर उचित परामर्श दिया जाता है। प्रो. आर्मस्ट्राँग के शब्दों में, "अनुसंधान

शिक्षण की वह विधि है, जिसमें हम विद्यार्थी को जहाँ तक हो सके एक अच्छे अनुसंधानकर्ता या खोजी के रूप में देखना चाहते हैं।" (Heuristic Method is the method of teaching which places the students as far as possible in the attitude of a discoverer.)

इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अनुसंधान विधि कोई अपने आप में एक अलग विधि नहीं है। इस विधि की परिभाषा विस्तृत रूप में इस प्रकार दी जा सकती है :

"कोई भी विधि जिसमें रूढ़िवादी विधियों के दोष न हों, जिनमें विद्यार्थी अपने प्रयत्नों द्वारा स्वयं ज्ञान प्राप्त कर सकें, जो स्वतंत्र चिंतन का अवसर प्रदान करके, विद्यार्थियों की मानसिक शक्तियों का पूर्णरूप से विकास कर सकें, अनुसंधान विधि कहला सकती है।"

अगर इस विधि को वास्तविक रूप में कोई निश्चित विधि न मानकर एक दृष्टिकोण माना जाए तो अधिक उपयुक्त रहेगा। इस तरह से आगमन-निगमन विधि, विश्लेषणात्मक विधि, प्रयोगशाला विधि आदि विधियाँ भी अनुसंधान विधि का रूप ले सकती हैं अगर इनमें विद्यार्थियों का दृष्टिकोण अनुसंधानात्मक रखा जा सके।

अनुसंधान विधि को कैसे प्रयोग में लाया जाए ?

अध्यापक विद्यार्थियों के सामने कोई एक समस्या रखता है। प्रत्येक विद्यार्थी से इस समस्या का हल ढूँढ़ निकालने के लिए कहा जाता है। सभी विद्यार्थी इस समस्या को प्रयोगात्मक रूप से अथवा सैद्धांतिक रूप से हल करने का प्रयत्न करते हैं। बालकों को स्वयं के प्रयास पर निर्भर रहकर ज्ञान की पुन: खोज करनी होती है। आवश्यकता पड़ने पर वे शिक्षक से परामर्श कर सके हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षक जब श्यामपट पर कोई प्रश्न हल करवाते हैं तो विद्यार्थियों से ऐसे प्रश्न पूछते हैं जिनमें पूर्णरूप से वैज्ञानिक तथा अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण की झलक हो। ऐसे प्रश्नों के द्वारा विद्यार्थी अपनी विचार शक्ति और कल्पना शक्ति द्वारा स्वयं प्रयत्न करके अपने पूर्वज्ञान के सहारे आगे बढ़ने का प्रयत्न करते रहते हैं। अध्यापक द्वारा केवल उचित दिशा में निर्देशन एवं परामर्श ही मिलता है। विद्यार्थियों को उचित निरीक्षण, परीक्षण एवं उचित सूझ-बूझ के द्वारा स्वयं ही समस्या का हल निकालना होता है।

अब हम इस विधि से लाभ-हानि का एक प्रश्न हल करेंगे।

प्रश्न—राम सिंह ने एक भैंस 500 रु. की खरीदी। बाद में पसंद न आने पर उसने यह एक दूसरे व्यक्ति को 400 रु. में बेच दी। बताओ उसे कितने प्रतिशत हानि हुई ?

विधि—विद्यार्थियों से इस समस्या को कई बार अच्छी तरह पढ़कर मनन करने को कहा जाएगा तथा अध्यापक उचित अनुसंधानात्मक प्रश्नों (True Heuristic Questions) की सहायता से विद्यार्थियों को इसे हल करने के लिए प्रेरित करेगा।

अध्यापक द्वारा पूछे हुए प्रश्न	विद्यार्थियों द्वारा दिए जाने वाले उत्तर
(*i*) इस प्रश्न में हमें क्या ज्ञात करना है ?	हानि प्रतिशत।
(*ii*) हानि प्रतिशत किस तरह मालूम की जाएगी ?	पहले कुल हानि निकाली जाएगी फिर प्रतिशत हानि मालूम करेंगे।
(*iii*) अपने प्रश्न को ध्यान से पढ़कर कुल हानि निकालिए।	विद्यार्थी प्रश्न को पढ़कर खोज करेंगे कि भैंस कम कीमत पर बेचने से राम सिंह को 100 रु. की

अनुसंधान विधि के गुण (Merits)

1. **मनोवैज्ञानिकता**—अनुसंधान विधि एक मनोवैज्ञानिक विधि है। इसमें कई उपयोगी शिक्षण सूत्रों का प्रयोग होता है। इसमें बालक की विकास अवस्था का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। बालक की स्वाभाविक रुचि, जिज्ञासा तथा कौतूहल को इस विधि में उचित प्रोत्साहन दिया जाता है, ताकि वह रुचिपूर्वक अपनी गति से ज्ञान ग्रहण कर सके। बालक का मन नई-नई बातों को सीखने में बहुत लगता है, विशेषकर जबकि उसे स्वयं अपनी गति से आगे बढ़ने दिया जाए। यह विधि इस प्रकार के अच्छे अवसर प्रदान करती है।

2. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास**—इस विधि के प्रयोग से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रवृत्ति का विकास होता है। बालकों में वैज्ञानिक ढंग से सोचने, बोलने, निरीक्षण करने, तथ्यों को परखने तथा उनके द्वारा किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचने की क्षमता उत्पन्न होती है। उनमें वैज्ञानिक ढंग से नवीन खोज करने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

3. **क्रियाशीलता**—इस विधि में विद्यार्थी निष्क्रिय होकर शिक्षक द्वारा दी हुई सूचनाएँ ग्रहण नहीं करते। इस विधि में बालकों को नए नियमों और सिद्धांतों की खोज करने के लिए तथा अध्यापक द्वारा पूछे गए प्रश्नों का ठीक उत्तर देने के लिए मानसिक रूप से चुस्त और क्रियाशील रहना पड़ता है। इस प्रकार अच्छी तरह से विचार शक्ति और तर्क शक्ति का प्रयोग करने के कारण उनकी मानसिक शक्ति का उचित विकास होता है।

4. **स्वयं करके सीखना**—इस विधि के अनुकरण से बालकों को स्वशिक्षा का महत्त्वपूर्ण पाठ मिलता है। बालकों में कठिन परिश्रम करने की आदत पड़ती है तथा वे अपनी शिक्षा का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर ही रखते हैं। बालक स्वयं आत्म-निर्भर होकर स्वयं-परीक्षण अथवा अनुभव के आधार पर ज्ञान ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्राप्त किया हुआ ज्ञान स्थायी तथा आनंददायक होता है। इससे बालकों में आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास तथा अपना कार्य आप करना आदि गुणों का विकास होता है।

5. **गुरु-शिष्य संबंध**—इस विधि के प्रयोग से अध्यापक का बालकों के साथ एक गहरा संबंध स्थापित हो जाता है। अध्यापक को इस विधि में एक सच्चे मित्र, भ्राता तथा मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना पड़ता है। प्रत्येक विद्यार्थी का मनोवैज्ञानिक रूप से अध्ययन करके उसे उचित समय पर उचित परामर्श और निर्देश देने पड़ते हैं। कक्षा में अन्वेषणात्मक प्रश्नों को विद्यार्थियों की योग्यता, मानसिक विकास तथा रुचियों के अनुकूल ढालना होता है। विद्यार्थियों को भी नवीन खोजों में समय-समय पर अध्यापक से परामर्श और निर्देश लेने की आवश्यकता होती है। अत: इस विधि में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को ही एक-दूसरे के निकट आना पड़ता है, जिससे उनके संबंध प्रगाढ़ हो जाते हैं।

6. **अनुशासन में सहायक**—इस विधि में सभी विद्यार्थियों को समस्या का हल खोजने का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है। विद्यार्थियों की बाह्य सहायता की अपेक्षा स्वयं की शक्तियों पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। अत: उनकी सभी शक्तियों का उचित दिशा में उपयोग होता रहता है। मानसिक रूप से चुस्त और क्रियाशील रहने पर उनका मस्तिष्क व्यर्थ की बातों में नहीं फँसता। इस प्रकार रचनात्मक अनुशासन बनाए रखने में बहुत सहायता मिलती है।

7. **गृहकार्य की परेशानी से मुक्ति**—इस विधि के प्रयोग से अध्यापक गृहकार्य देने के झंझट से मुक्त रहते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को भी घर पर गृह-कार्य के बोझ से नहीं दबना पड़ता है। परीक्षण करना, लिखाना, पढ़ना, प्रश्न पूछना, वाद-विवाद करना इत्यादि सभी कार्य कक्षा में ही होते हैं।

अनुसंधान विधि के दोष

1. **विद्यार्थियों से आवश्यकता से अधिक आशा करना**—यह विधि बालकों की योग्यता, सामर्थ्य एवं मानसिक विकास को ध्यान में न रखकर उनसे बहुत अधिक आशा रखती है। किसी नवीन ज्ञान की खोज तथा अन्वेषण कोई मजाक नहीं है। इसके लिए बहुत कठिन परिश्रम, पहले की संपूर्ण खोजों का पूर्णरूप से ज्ञान, पूर्ण एकाग्रता, विचार शक्ति तथा अन्य वैज्ञानिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है जो कि बहुत कम विद्यार्थियों में ही पाई जाती है।

2. **अध्यापकों से अधिक आशा रखना**—यह विधि अध्यापकों से भी आवश्यकता से अधिक परिश्रम, योग्यता और प्रवीणता की आशा रखती है। अध्यापकों को सोच-सोचकर ऐसे प्रश्न बनाने होते हैं, जो बच्चों को स्वतंत्र चिंतन का अवसर देकर उचित दिशा में अग्रसर कर सकें। विद्यार्थियों का मनोवैज्ञानिक रूप से अध्ययन करके उनका उचित समय पर उचित मार्ग-निर्देशन करना पड़ता है। आजकल जबकि श्रेणियों में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होती है, इस प्रकार का व्यक्तिगत परामर्श असंभव हो जाता है। इसके अतिरिक्त बेचारे अध्यापक की सामाजिक और आर्थिक हीनता उसे निरुत्साहित और जीवन के प्रति निराशावादी बना देती है। ऐसी परिस्थिति में उससे अधिक काम की आशा कदापि नहीं की जा सकती।

3. **उन्नति में बाधा**—प्रत्येक बात की खोज करके ही ज्ञान ग्रहण करने में बहुत समय लगता है। ज्ञान भंडार जो आज हमारे पास है, सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक मानव द्वारा कमाई हुई पूँजी

है। इस ज्ञान को ही भलीभाँति ग्रहण कर पाना हमारे इस छोटे से जीवनकाल में संभव नहीं हो पाता, फिर दूसरे व्यक्तियों द्वारा खोजे हुए ज्ञान की पुनः खोज करने में समय को व्यर्थ नष्ट करना कहाँ तक तर्क सम्मत है ? इससे हमारा विकास रुक जाता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी तो विद्यार्थी तथ्यों को खोजने में इतने हतोत्साहित हो जाते हैं कि वे इस विषय से दूर भागने लगते हैं।

4. **पाठ्यक्रम को समाप्त करने में कठिनाई**—इस विधि में सभी ज्ञान विद्यार्थियों को स्वयं खोज करके प्राप्त करना होता है। इसलिए बहुत ही धीमी गति से आगे बढ़ा जाता है। निश्चित अवधि में लंबा-चौड़ा पाठ्यक्रम समाप्त करना इस विधि में पूर्णतया असंभव ही है।

5. **त्रुटिपूर्ण निर्णय की संभावना**—इस विधि से खोज करते समय यह सोचना कि विद्यार्थी सदैव ठीक ही खोज करते रहेंगे, बड़ी भूल है। अविकसित मानसिक शक्तियों, अपरिपक्व अनुभव तथा उतावलेपन के कारण बालक प्रायः त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष निकाल लेते हैं जिनसे उन्हें काफी हानि होती है।

6. **उपयुक्त सहायक सामग्री का अभाव**—इस विधि के लिए पर्याप्त सहायक सामग्री, यंत्रों तथा पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है, जो कि प्रत्येक स्कूल में अर्थाभाव के कारण उपलब्ध नहीं हो सकते तथा इस विधि पर आधारित पाठ्यपुस्तकों का भी अभाव है। इस तरह इस विधि के प्रयोग में कई व्यावहारिक कठिनाइयाँ आ जाती हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि बहुत गुण होते हुए भी यह विधि व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी नहीं है। वैसे भी इस विधि द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान पर्याप्त नहीं होता। बहुत लंबे समय में सीमित ज्ञान प्राप्त होने से बहुत सा समय तथा परिश्रम व्यर्थ चला जाता है। खोज और अन्वेषण संबंधी सुनहले स्वप्न अंततः स्वप्न बनकर ही रह जाते हैं। अतः इस विधि को मौलिक रूप से प्रयोग करना संभव नहीं हो सकता। अगर शिक्षण क्रिया में इस विधि में निहित अन्वेषणात्मक भावना या दृष्टिकोण को जीवित रखा जाए, विद्यार्थियों को स्वयं काम करने तथा सीखने को अधिक-से-अधिक प्रेरित किया जाए, प्रत्येक बात की खोज पर विशेष जोर न डाला जाए, तो यह अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस विधि में गुण-दोष दोनों ही हैं। यदि अध्यापक इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन करके अनुकूल अवसर पर इसे प्रयोग करें तो इससे विद्यार्थियों को काफी लाभ पहुँचाया जा सकता है।

समस्या समाधान विधि
(Problem Solving Method)

गणित का अध्ययन करते समय विद्यार्थी प्रदत्त समस्याओं के हल हेतु अनवरत प्रयास करते ही रहते हैं। अपनी दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में भी उन्हें ऐसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो उनसे उनका उचित समाधान चाहती हैं। समस्या समाधान कौशल के अर्जन की इस तरह उन्हें किसी-न-किसी रूप में सदैव जरूरत पड़ती ही रहती है। अपने वातावरण के साथ समायोजन हेतु इस प्रकार की योजना का विकास उनके लिए काफी आवश्यक होता है। उचित यही है कि उनमें इस तरह की योग्यता और कौशल का विकास विद्यार्थी जीवन में ही हो जाए। गणित की पढ़ाई उनको इस दिशा में उचित सहायता कर सकती है, क्योंकि गणित के कलेवर में समस्याओं का भंडार होता है और उनका समाधान उन्हें अपनी पढ़ाई-लिखाई के दौरान करना ही पड़ता है। इस रूप में गणित शिक्षण में समस्या समाधान विधि के प्रयोग का काफी महत्त्व है, क्योंकि अगर विद्यार्थियों में समस्या समाधान योग्यता और कुशलता का समुचित विकास करना है तो उन्हें उसी रूप में उसी विधि से शिक्षण देना अधिक

उपयुक्त रहेगा जिससे उनमें इस प्रकार की योग्यता और कुशलता के विकास में अधिक-से-अधिक सहयोग मिले। आइए गणित शिक्षण में प्रयुक्त इस विधि की कार्य प्रक्रिया को समझा जाए।

समस्या समाधान क्या है ? (What is problem solving?)

साधारण शब्दों में समस्या (Problem) से संबंध किसी ऐसी परिस्थिति में घिर जाना है जिसमें से बाहर निकलना होता है, परंतु बाहर निकलने का रास्ता या समाधान पहले से नहीं मालूम होता। कोई बालक गणित के किसी समस्या या प्रश्न का सामना करता है, वह उसे हल करना चाहता है परंतु उसे पहले तो उसका कोई हल या समाधान नहीं आता। ऐसी स्थिति में उसके लिए वह प्रश्न या समस्या, समस्या बनकर खड़ा हो जाता है। वह जब उसे हल करने या समाधान खोजने में अपने आपको लगा देता है तब इस प्रक्रिया को समस्या समाधान प्रक्रिया कहना प्रारंभ कर दिया जाता है। इस प्रकार समस्या समाधान (Problem Solving) से तात्पर्य ''हमारे द्वारा किसी परिस्थिति में किए जाने वाले उन प्रयासों से है जब हमें यह नहीं मालूम होता कि हमें क्या करना चाहिए।'' (Problem solving is "what we do when we don't know what to do.") गणित पढ़ाने में इस प्रकार की समस्या समाधान प्रक्रिया का उपयोग करना बालक के लिए काफी मूल्यवान सिद्ध हो सकता है। इससे वह गणित की विषयवस्तु में शामिल विविध समस्याओं को हल करने के ढंग का अच्छी तरह प्रशिक्षण और अभ्यास प्राप्त कर सकता है। साथ ही दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं का भी अर्जित समस्या समाधान योग्यता के सहारे अच्छी तरह सामना कर सकता है। ''समस्या'' और ''समस्या समाधान'' का इस प्रकार अर्थ जानने के बाद अब हम समस्या समाधान विधि को निम्न प्रकार परिभाषित करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

समस्या समाधान विधि की परिभाषा (Defining Problem Solving Method)

समस्या समाधान विधि से तात्पर्य शिक्षण की उस विधि से है जिसके अंतर्गत विद्यार्थी को सभी तरह से ऐसी उपयुक्त परिस्थितियाँ प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता है जिसमें उसका किसी ऐसी समस्या से विशेष (या समस्याओं) रूप से सामना हो जिन्हें हल करना वह पहले से नहीं जानता हो परंतु फिर भी वह उसे हल करने के लिए गंभीर प्रयत्न करते हुए उसका सर्वोत्तम हल खोज सके और इस हल को उस जैसी अन्य समस्याओं के हल में प्रयुक्त कर सके।

समस्या समाधान विधि की प्रक्रिया (Process of Problem Solving Method)

उपरोक्त परिभाषा हमें समस्या समाधान विधि की प्रक्रिया से परिचित होने में काफी सहायता कर सकती है। इसके अनुसार किसी विद्यार्थी का किसी विशेष परिस्थिति में किसी कठिनाई या समस्या से सामना हो सकता है। वह अपनी इस कठिनाई या प्रस्तावित समस्या का समाधान ढूँढ़ना चाहता है। परंतु वह अपने पिछले ज्ञान तथा अनुभवों के सहारे ऐसा आसानी से या तुरंत नहीं कर पाता। उसे कुछ नवीन अनुभव चाहिए, नवीन ज्ञान तथा कौशल चाहिए, समस्या निवारण या समाधान के लिए कोई नई तकनीक या तरीके चाहिए, इन सभी को ढूँढ़ने के लिए ही वह प्रयासों में जुट जाता है। समस्या समाधान के लिए या प्रश्न के हल संबंधी उसे कई तरीके सूझते हैं वह इन सभी को अथवा जिसे वह ठीक समझता हो प्रयोग में लाने का प्रयत्न करता है। इस कार्य में उसके पूर्व अनुभव तथा कौशल भी यथासंभव मदद कर सकते हैं। अपने इन प्रयत्नों के आधार पर वह सही समाधान तक पहुँचने की कोशिश करता है। उसका यह हल या समाधान सही है, इसकी पुष्टि भी करने का प्रयत्न करता है और इस तरह वह अपनी समस्या का उचित समाधान खोजने में सफल हो जाता है। इससे उसे समस्या के समाधान संबंधी नवीन ज्ञान

कौशलों तथा तकनीकों की नई जानकारी मिलती है और फिर वह इस जानकारी का लाभ ऐसी ही नई समस्याओं तथा नवीन समस्याओं के हल करने में उठाने में लग जाता है।

समस्या समाधान विधि के सोपान
(Stages or Steps in Problem Solving Method)

समस्या समाधान विधि के अंतर्गत सामान्यतया निम्न सोपानों का अनुसरण करना होता है।

1. **समस्या का सामना करना** (Confrontation with the Problem)—सबसे पहले शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं या वे स्वतः ही स्वाभाविक रूप में उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें विद्यार्थी को किसी समस्या **विशेष (या समस्याओं) का सामना करना** पड़ जाए। गणित शिक्षण में ऐसी परिस्थितियाँ आती ही रहती **हैं। गणित की पाठ्यपुस्तक की समस्याएँ** या प्रश्न बालक के लिए ऐसी समस्याएँ बन सकते हैं। अध्यापक द्वारा अपने पढ़ाए हुए पाठ **या पढ़ाए** जाने वाले पाठों के आधार पर ऐसी समस्याएँ बालकों के सामने रखी जा सकती हैं जिनका हल करना उनके लिए समस्या बन जाए। विद्यार्थी घर पर या पुस्तकालय में अध्ययन करते समय इस प्रकार की समस्याओं का सामना कर सकते हैं। दैनिक जीवन या परिवेश संबंधी कोई घटना या आवश्यकता उन्हें ऐसी समस्याओं से परिचित करा सकती है। उदाहरण के लिए, बालक को यह जिज्ञासा हो सकती है कि उसके घर में जो रंग-रोगन हो रहा है उसकी मज़दूरी का हिसाब कैसे लगाया जा सकता है और यह बात उसे विभिन्न आकृतियों के क्षेत्रफल निकालने संबंधी समस्या से सामना करा सकती है।

2. **समस्या को ठीक प्रकार समझना** (Proper Understanding of the Problem)—समस्या से सामना हो जाने के बाद से ही उसके समाधान संबंधी प्रयत्न या उसके लिए उधेड़बुन शुरू हो जाती है। इसमें अब पहल इस बात से होनी चाहिए कि समस्या को पहले ठीक तरह से जान लिया जाए। समस्या क्या है? इसकी क्या प्रकृति है? क्या इस तरह की समस्याएँ पहले भी कभी आई हैं? उनसे इसमें क्या अंतर है? इस तरह समस्या के बारे में गहराई से मनन और चिंतन होना चाहिए। इसका अच्छी तरह से समझकर आवश्यक विश्लेषण भी किया जाना चाहिए। कई बार ऐसा होता है कि समाधान ढूँढ़ने के प्रयत्न प्रारंभ हो जाते हैं तथा यह पता नहीं होता कि हमारी समस्या वास्तव में है क्या। ऐसी हालत में सारी मेहनत व्यर्थ हो जाती है। अतः विद्यार्थियों को चाहिए कि जब भी उनका सामना किसी समस्या से हो तो वे उस पर गहराई से विचार करें, उसका अर्थ समझें तथा यह पता करें कि दी हुई समस्या या प्रश्न में उनको क्या क्या दे रखा है तथा उन्हें क्या ज्ञात करना है। इस तरह की स्पष्टता ही उनके आगे के प्रयत्नों को सही दिशा प्रदान कर सकती है। समस्या का सही अर्थ जानने तथा विश्लेषण करने में सामान्यतः निम्न बातें उन्हें लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं।

- शांति और धैर्य के साथ समस्या का अध्ययन और मनन करना चाहिए।
- समस्या का उचित विश्लेषण कर यह पता लगाना चाहिए कि वास्तव में समस्या है क्या? वह उनसे किस तरह का समाधान चाहती है?
- समस्या को समझने तथा विश्लेषण करने के लिए छोटे-छोटे सार्थक भागों में विभाजित करना, उससे संबंधित शाब्दिक सारांश बनाना, रेखाकृति द्वारा उसे व्यक्त करना आदि बातों को जरूरत हो प्रयोग में लाने के प्रयत्न करने चाहिए।

3. **समस्या के संभावित हल या समाधान खोजना** (Search for the Probable Solutions of the Problem)—समस्या का ठीक तरह विश्लेषण करके यह जानने के बाद कि समस्या किस प्रकृ

की है तथा यह किस प्रकार का हल चाहती है, उसके निराकरण या समाधान के गंभीर प्रयत्न किए जाने चाहिए। इस कार्य के लिए जो भी पूर्व अनुभव, ज्ञान तथा कुशलताएँ काम आ सकती हों उन्हें अच्छी तरह सोच विचार कर प्रयोग में लाने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। किसी अन्य स्रोत से सहायता अपेक्षित हो तो ऐसे भी प्रयास किए जाने चाहिए। पुस्तकालय में आवश्यक पठन सामग्री का अध्ययन करना, प्रयोगशाला में कोई प्रयोग करना, व्यावहारिक तौर पर माप-तोल, गिनने, सर्वेक्षण आदि से संबंधित प्रक्रिया करना, किसी और उपयुक्त जगह से आवश्यक सूचना या आँकड़े इकट्ठे करना आदि जो भी बातें समस्या के संभावित हल तलाश करने में सहायक सिद्ध होती हों उन सभी का भरपूर लाभ उठाने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक से उचित मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। कई बार प्रयास एवं भूल (Hit and Trial) विधि का सहारा लेना भी अच्छा रहता है। इस प्रकार से प्रयत्न करते-करते सभी उचित एवं संभव विकल्पों की तलाश विद्यार्थियों द्वारा की जानी चाहिए जो उन्हें उनकी समस्याओं के समाधान या हल ढूँढ़ने में सहायक सिद्ध होते हों। ऐसे सभी विकल्पों का क्रमबद्ध रूप से आगे के कार्य हेतु सामने रखा जाना चाहिए।

4. **सही समाधान या हल का चुनाव और उसकी जाँच** (Selection and Testing of Appropriate Solution)—समस्या समाधान हेतु जो भी विकल्प सामने आए हैं उन सभी को एक-एक करके प्रयोग में लाकर देखा जाना चाहिए। कई बार यह कार्य मानसिक स्तर पर ही संपन्न हो सकता है तो कई बार व्यावहारिक रूप से करना ठीक रहता है। जो भी विधि अपनाई जाए, विकल्पों या संभावित समाधानों की जाँच अवश्य ही होनी चाहिए ताकि इसके फलस्वरूप सही समाधान या हल तक पहुँचा जा सके। इस अंतिम समाधान या हल तक पहुँचकर इसकी सत्यता की जाँच भी किया जाना अत्यंत आवश्यक है। इसे सही समाधान के रूप में तभी स्वीकारा जाना चाहिए जब वह इस जाँच में खरा उतरे। उदाहरण के लिए, गणित संबंधी समस्या का उत्तर जब उत्तरमाला से मिल जाए तभी उसे ठीक हल माना जा सकता है। किसी ज्यामिती आकृति की रचना अब अन्य तरह से माप ली जाए तभी उसे सही माना जा सकता है, आदि-आदि। प्रश्नों के अतिरिक्त भी गणित संबंधी कई व्यावहारिक समस्याएँ हो सकती हैं, उन सभी के लिए संभावित समाधानों में से सही समाधान ढूँढ़ते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

- इसके द्वारा समस्या का यथार्थ और विश्वसनीय समाधान प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
- समाधान पूर्व स्थापित तथ्यों, नियमों एवं सिद्धांतों के अनुकूल होना चाहिए।
- ऐसे सभी नकारात्मक उदाहरणों तथा परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए जो उसकी सत्यता पर संदेह उत्पन्न करते हों।

5. **स्वीकृत समाधान का प्रयोग करना** (Utilization of Accepted Solution)—समस्या का जो भी समाधान अंतिम रूप से स्वीकृत किया जाए उसकी और अधिक प्रामाणिकता और सत्यता सिद्ध करने के लिए उसे और उसी जैसी समस्याओं के हल में प्रयोग करके देखा जाना चाहिए। इससे एक लाभ यह भी होता है कि समस्या समाधान के इस नए ढंग का पर्याप्त अभ्यास भी बालकों को हो जाता है।

समस्या समाधान शिक्षण का महत्त्व एवं लाभ
(Importance and Utility of Teaching Problem Solving)

बालकों को समस्या समाधान विधि से शिक्षण प्रदान करना या उन्हें समस्या समाधान का प्रशिक्षण देना कहाँ तक लाभदायक सिद्ध हो सकता है—इसके उत्तर में मुख्य रूप से निम्न बातें कही जा सकती हैं।

1. गणित शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बालकों को इस योग्य बनाना है कि वे अपने प्रयत्नों से अपनी समस्याओं या प्रश्नों के हल ढूँढ़ सकें, समस्या समाधान विधि या उसका प्रशिक्षण इस उद्देश्य की प्राप्ति में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होता है।
2. गणित की अपनी प्रकृति या स्वरूप ही ऐसा है कि जिसमें पग-पग पर विद्यार्थियों को तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, नए तरीकों से परिचित होना पड़ता है, नवीन ज्ञान तथा कौशलों को अर्जित करना होता है तथा प्राप्त ज्ञान एवं कुशलताओं को व्यावहारिक रूप से काम में लाना होता है। यह सभी कार्य तभी ठीक प्रकार संभव हो सकते हैं जबकि बालकों को समस्याओं का सामना कर उनका समाधान करने का प्रशिक्षण मिले। समस्या समाधान विधि या उसका प्रशिक्षण इस प्रयोजन की पूर्ति भलीभाँति कर सकता है।
3. समस्या समाधान विधि या समस्या समाधान के प्रशिक्षण के द्वारा बालकों की मानसिक शक्तियों का यथेष्ट विकास करने में बहुत सहायता मिलती है। चिंतन मनन, विश्लेषण निष्कर्ष निकालने तथा सामान्यीकरण की जितनी क्षमता इस विधि द्वारा विकसित हो सकती है उतनी और किसी विधि से नहीं।
4. समस्या समाधान विधि द्वारा बालकों को समस्याओं के समाधान हेतु वैज्ञानिक ढंग अपनाने का प्रशिक्षण प्राप्त हो सकता है।
5. समस्या समाधान की योग्यता विकसित होने से बालकों में पर्याप्त आत्म-विश्वास तथा आत्म-निर्भरता आ जाती है। यह बात उन्हें अपने जीवन में आने वाली कठिनाइयों तथा समस्याओं के उचित निराकरण में भी बहुत मूल्यवान सिद्ध होती है।
6. समस्या समाधान विधि या इसका प्रशिक्षण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सजीवता तथा सक्रियता लाने में भी पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है। बालक गंभीरता से समस्या समाधान के प्रयत्नों में जुटे रहते हैं। समस्या समाधान उनके लिए चुनौती खड़ी करता है—और वे पूरी लगन एवं तत्परता से अध्ययन में जुटे रहते हैं। समस्याओं का निराकरण करके उन्हें जो सुखद अनुभूति होती है उससे वे नवीन उत्साह से गणित अध्ययन में लगे रहते हैं।
7. समस्या समाधान विधि या उसका प्रशिक्षण केवल सैद्धांतिक रूप से ही उपयोगी सिद्ध नहीं होता। गणित के तथ्यों, नियमों प्रक्रियाओं तथा गणना कार्य को दैनिक जीवन के कार्य में कैसे लाया जाता है इसका व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करने का उत्तरदायित्व भी इसके द्वारा भलीभाँति निभाया जा सकता है।

सीखने के साधन
[Learning Resources]

ग्रीष्मकालीन कार्यक्रम का महत्त्व
(Importance of Summer Program)

ग्रीष्मकालीन कार्यक्रम के अन्तर्गत होने वाली विचार गोष्ठी/सम्मेलन/संगोष्ठी (Conference) आदि का वर्णन करो। सेमीनार से ज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्ष के किन उद्देश्यों की प्राप्ति होती है?

उत्तर : अधिकांशतया विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षण तथा अनुदेशन स्मृति स्तर तक ही सीमित रहता है, अधिक से अधिक यह बोध स्तर तक सम्भव हो जाता है। जबकि अनुदेशनात्मक परिस्थितियाँ ऐसी होनी चाहिए जो छात्रों में चिन्तन स्तर की अधिगम परिस्थितियों को प्रोत्साहित कर सकें। ऐसी परिस्थितियों में वांछनीय अन्तः प्रक्रिया से उच्च ज्ञानात्मक योग्यताओं एवं क्षमताओं को विकसित किया जाता है। इस स्तर की अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करने की विधियों में सेमीनार या विचार गोष्ठी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि है। विचार गोष्ठी अथवा सेमीनार अनुदेशन की एक प्रविधि है, जिससे चिन्तन स्तर के अधिगम के लिए अन्तः क्रिया की परिस्थिति उत्पन्न की जाती है। इस प्रविधि को विभिन्न स्तरों पर अनुदेशन उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अनुदेशन की इस प्रविधि से ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

स्टूक के अनुसार, "सिद्धान्ततः संगोष्ठी प्रविधि व्याख्यान विधि की प्रक्रिया को उलट देती है। यहाँ दल के नेता का उद्देश्य संगोष्ठी के संभागियों की जानकारी प्राप्त करना है ना कि उन्हें देना।" यह प्रविधि सर्वेक्षानिक सिद्धान्त पर आधारित है। इस विधि में एक व्यक्ति का निर्णय नहीं होता बल्कि सामूहिक रूप से होता है, जो अच्छे होते हैं।

सेमीनार से प्राप्त होने वाले ज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्ष

ज्ञानात्मक उद्देश्य :

1. विश्लेषण तथा आलोचनात्मक क्षमताओं का विकास करना।
2. निरीक्षण तथा अनुभवों के प्रस्तुतीकरण की क्षमताओं का विकास करना।
3. किसी प्रकरण सम्बन्धी स्पष्टीकरण करने तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता का विकास करना।
4. संश्लेषण तथा मूल्यांकन की योग्यता का विकास करना।

भावात्मक उद्देश्य :

1. विचारों की स्वच्छन्दता तथा दूसरों से सहयोग की भावना का विकास।
2. भावात्मक स्थिरता का विकास।
3. दूसरों की भावनाओं के प्रति सम्मान की भावना का विकास।
4. अन्य व्यक्तियों के विरोधी विचारों तथा दृष्टिकोण की सहनशीलता का विकास।

उपर्युक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त सेमीनार से अपना दृष्टिकोण रखने, स्पष्ट करने तथा माँगने के व्यवहारों

का विकास होता है। प्रश्न पूछने एवं उत्तर देने के कौशल का विकास होता है। अपने दृष्टिकोण प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने एवं तर्क करने का संतुलित ढंग से विकास होता है।

☛ **सेमीनार तथा कार्यशाला के बारे में आप क्या जानते हैं? सेमीनार/सम्मेलन प्रविधि के सोपानों का वर्णन करो।**

उत्तर :

सेमीनार
(Conference)

सेमीनार में भाग लेने वाले व्यक्तियों को वक्ता कहते हैं। प्रकरण के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में अलग-अलग वक्ता प्रपत्र तैयार कर सकते हैं। सेमीनार का प्रकरण पूर्व नियोजित होता है। सामान्यतया संस्थानों में उच्च स्तर पर प्रति सप्ताह पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकरणों पर सेमीनार आयोजित की जाती सेमीनार के प्रारम्भ होते ही अध्यक्ष का चयन किया जाता है, संचालन का उत्तरदायित्व उसका ही होता प्रायः वक्ता अपने प्रपत्र की प्रतिलिपियाँ कराकर सेमीनार के प्रारम्भ में उनका वितरण कर देते हैं। पश्चात् अध्यक्ष वाद-विवाद की व्यवस्था करता है। वाद-विवाद के अन्त में अध्यक्ष प्रकरण के सम्बन्ध विभिन्न वक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किये गये विचारों का संक्षेपीकरण प्रस्तुत करता है और भागीदारों के सह के लिए आभार प्रदर्शित करता है और धन्यवाद देता है। इसके माध्यम से प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास है। साथ ही सदस्यों में आलोचनात्मक चिंतन एवं तर्क क्षमता का विकास होता है। भागीदारों में वाचन व क्षमता का विकास होता है।

कार्य गोष्ठियाँ/कार्यशाला
(Work-Shop)

अधिकांश अनुदेशन प्रविधियों द्वारा सैद्धान्तिक ज्ञान का विकास किया जाता है। व्यावहारिक ज्ञ प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, जिससे कि छात्रों में क्रियात्मक पक्ष का विकास किया सके। इसके लिए कार्यशाला प्रविधि का प्रयोग करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस विधि के प्रयोग द्वारा सुचारु हाथ से करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है।

कार्यशाला एक ऐसी शिक्षण प्रविधि है जिसमें शिक्षक शिक्षण की समस्याओं पर न केवल विचार करते हैं, अपितु सामूहिक रूप से रचनात्मक कार्य भी करते हैं। कार्यशाला शैक्षिक समस्याओं के समाधान करने का एक सामूहिक प्रायोगिक प्रयास है। इसमें पहले समस्या के बारे में सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता तत्पश्चात् संभागियों के द्वारा प्रायोगिक कार्य किया जाता है। संभागियों द्वारा आपस में विचार विमर्श जाता है। इसमें उपस्थित विशेषज्ञ भी संभागियों के प्रायोगिक कार्य में अपने सुझाव देते हैं। इस प्रविधि में छात्रों में सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ प्रायोगिक कार्य करने के कौशल का विकास भी होता जिससे उन्हें व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त होता है।

डॉ. पी. सिंह के अनुसार, "कार्यशाला आमने-सामने का ऐसा प्राथमिक समूह है जिसमें सह अन्तःक्रिया अधिक नजदीक तथा प्रत्यक्ष होती है और सदस्यों पर अधिक सामाजिक नियन्त्रण रहता

("A workshop is a face to face primary group in which social interaction more intimate and direct influencing social control over the individuals.")

सेमीनार/सम्मेलन प्रविधि के सोपान
(Steps of Conference Technique)

1. **प्रकरण का चयन**–संगोष्ठी की संचालन प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व प्रकरण का चयन आवश्यक है। यह चयन बालकों के मानसिक स्तर के अनुसार किया जाना आवश्यक है।
2. **नेता का चयन**–संगोष्ठी के संचालन के लिए अध्यक्ष या नेता का चयन किया जाना आवश्यक

है ताकि वह समय-समय पर आवश्यक मार्गदर्शन व व्यवस्था बनाये रखते हुए संगोष्ठी को सफल बनाए।

3. **संगोष्ठी की बैठक व्यवस्था**–नेता के चयनोपरान्त संगोष्ठी के लिए समुचित बैठक व्यवस्था करना।
4. **संगोष्ठी का प्रारम्भ**–(अध्यक्ष) नेता संगोष्ठी के प्रकरण के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व बताते हुए संगोष्ठी का शुभारम्भ करता है।
5. **मूल्याँकन**–संगोष्ठी के समापन के समय उसका मूल्याँकन किया जाये ताकि यह मालूम हो सके कि संगोष्ठी कहाँ तक सफल रही।

कार्यशाला के उद्देश्यों, विशेषताओं तथा सीमाओं का वर्णन करो।

उत्तर :

कार्यशाला के उद्देश्य (Objectives of Work-shop)

कार्यशाला में संभाग अपने विचारों के आदान-प्रदान, कार्यक्रम की रूपरेखा तथा कार्यक्रम की सफलता के मूल्याँकन हेतु सम्मिलित होते हैं। इसके मुख्यतः निम्न उद्देश्य हैं :

ज्ञानात्मक उद्देश्य :

1. शिक्षा तथा व्यवसाय सम्बन्धी उद्देश्यों एवं विधियों का सामूहिक रूप से निर्धारण करना।
2. किसी प्रकरण सम्बन्धी स्पष्टीकरण करने तथा उसके व्यावहारिक पक्ष को समझना।
3. शिक्षण व्यवसाय सम्बन्धी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ निकालना।
4. अनुदेशन तथा शिक्षा सम्बन्धी परिस्थितियों के सामाजिक अथवा दार्शनिक पक्ष की विस्तार में विवेचना करना।

क्रियात्मक उद्देश्य :

1. शिक्षण की विशिष्ट व्यावसायिक क्षमताओं का विकास करना।
2. शिक्षण तथा शिक्षा सम्बन्धी नये उपागमों का प्रशिक्षण देना।
3. शिक्षण की प्रभावशाली प्रविधियों एवं विधियों का निर्धारण।
4. व्यक्तिगत रूप में भाग लेने तथा कार्य करने की योग्यताओं का विकास करना।

कार्यशाला की विशेषताएं (Characteristics of Work-Shop)

कार्यशाला अनुदेशन एवं अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करने की एक प्रभावशाली प्रविधि है। इस प्रविधि की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :

(1) कार्यशाला द्वारा नवीन प्रत्ययों एवं उपागमों से अवगत कराया जा सकता है तथा उनकी प्रभावशीलता के मूल्यांकन का अवसर मिलता है।
(2) इससे छात्रों में अच्छा प्रदर्शन करने की अभिप्रेरणा तथा प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास होता है।
(3) इसमें व्यावसायिक समस्याओं के गहन अध्ययन का अवसर मिलता है।
(4) समूह में कार्य करने तथा सहयोग की भावना का विकास होता है।
(5) समस्याओं के समाधान एवं व्यावसायिक कौशलों के विकास के लिए सुझाव तथा निर्देशन भी दिया जाता है।
(6) उच्च स्तरीय व्यक्तिगत क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाता है तथा उनको अभ्यास का अवसर दिया जाता है।
(7) शिक्षण कौशलों का विकास एवं सुधार किया जाता है।

(8) शिक्षा के नवीन उपागमों की सैद्धान्तिक क्षमताओं का विकास किया जाता है।
(9) शिक्षा के ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।
(10) इससे मिलकर कार्य करने की भावना व सामाजिक गुणों का विकास होता है।

कार्यशाला/कार्य गोष्ठी की सीमाएँ
(Limitations of Work-shop)

कार्यशाला की निम्नलिखित सीमाएँ हैं :

(1) संभागियों में परस्पर सहयोग का अभाव रहता है।
(2) इस प्रविधि में शिक्षणार्थियों को अधिक समय तक कार्य करना होता है, इसलिए वे रुचि नहीं लेते हैं। अक्सर व्यवस्था ज्ञान स्तर पर ही होती है।
(3) अनुभवी विशेषज्ञों का अभाव रहता है।
(4) इसके द्वारा समस्त विषयों पर चर्चा नहीं की जा सकती है।
(5) इसमें अधिक धन, समय व श्रम की आवश्यकता होती है।
(6) शिक्षकों में सहयोग की भावना का अभाव होता है।
(7) कार्यशाला में अनुसरण अवस्था (Follow-up) का अभाव रहता है, जिससे सदस्यों को उसकी प्रभावशीलता का बोध नहीं होता है।
(8) सेवारत शिक्षक नवीन प्रत्ययों एवं उपागमों में रुचि नहीं लेते हैं, क्योंकि उनकी अभिवृत्ति उनके पक्ष में नहीं होती है।

☛ **कार्यशाला/कार्यगोष्ठी की कार्यविधि समझाइये। कार्यशाला की क्या भूमिका है? किसी गोष्ठी प्रविधि एवं कार्यशाला प्रविधि में भाग लेने वालों की भूमिका में तुलना करो।**

उत्तर : कार्यशाला आरम्भ करने से पूर्व कार्यशाला के नेता का चयन, सन्दर्भ, व्यक्तियों तथा सम्भागियों का निर्धारण किया जाता है। कार्यशाला के उद्देश्यों के निर्धारण के साथ-साथ जिस सामग्री का निर्माण करना है, उसकी सूची बना ली जाती है। इसमें प्रमुख रूप से निम्न तीन सोपानों का अनुसरण किया जाता है :

1. **प्रस्तुतीकरण :** सर्वप्रथम विषय का सैद्धान्तिक ज्ञान विशेषज्ञ द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। सैद्धान्तिक ज्ञान हेतु व्याख्यान की अपेक्षा सामूहिक विचार-विमर्श किया जाता है। विचार-विमर्श के समय उत्पन्न शंकाओं का समाधान विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है।
2. **क्रियान्वयन :** कार्यशाला को प्रस्तुतीकरण की अवस्था के बाद पूरे समूह को छोटे समूहों में बाँट दिया जाता है, जिसमें वे स्वतंत्र रूप से चिन्तन करते हैं। इसमें समूह का नेता अपने विचारों को समूह पर थोपने की अपेक्षा उन्हें सुझाव एवं मार्गदर्शन देता है ताकि वे विषय पर कहीं एकमत होकर किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकें। जिन बिन्दुओं पर मतभेद रहता है, उन पर पुनः विचार किया जाता है तथा यह प्रयत्न रहता है कि समूह के सदस्य किसी निष्कर्ष तक पहुँच सकें। इस सोपान के अन्त में प्रत्येक समूह अपनी गतिविधियों का प्रतिवेदन करते हैं, जिनको सम्भागियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।
3. **मूल्यांकन :** कार्यशाला की सफलता ज्ञात करने हेतु संदर्भ व्यक्ति अथवा विशेषज्ञ संभागियों की लिखित परीक्षा लेते हैं। अभिरुचि एवं अभिवृत्ति के मूल्यांकन हेतु स्तर मापनी (Rating Scale) का प्रयोग किया जाता है। कार्यशाला में प्रायोगिक कार्य करवाया जाता है, अतः, मूल्यांकन हेतु किये कार्य का नमूना भी सम्भागी से बनवाया जा सकता है।

कार्यशाला की भूमिका
(Role of Work-Shop)

कार्यशाला के आयोजन एवं व्यवस्था के लिए चार प्रकार की भूमिकायें निभानी होती हैं :

(1) कार्यशाला की योजना तैयार करके व्यवस्था करता है। कार्यशैली का प्रकरण तथा स्रोत-व्यक्तियों का निर्धारण करके उनसे सम्पर्क स्थापित करता है और कार्यशाला का स्थान, तिथियों, कार्यक्रम के सम्बन्ध में निर्णय लेकर उनकी व्यवस्था करता है। इन सभी कार्यों का उत्तरदायित्व अनुदेशक या व्यवस्थापक का होता है।

(2) अध्यक्ष का चयन अनुदेशक करता है। अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे कार्यशाला प्रकरण तथा उसकी व्यावहारिक उपयोगिता का पूर्ण बोध हो। कार्यशाला की आरम्भिक अवस्था में अध्यक्ष की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

(3) विशेषज्ञों या स्रोत व्यक्तियों (Resource Person) की भूमिका ऐसे आयोजन पर अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। इनका उत्तरदायित्व होता है कि वे प्रशिक्षणार्थियों को नवीन उपागम के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करें। तत्पश्चात् उसके प्रयोग के लिए प्रशिक्षण भी दें जिससे वे अपने शिक्षण या शिक्षा संस्थाओं में उपभोग कर सकें। स्रोत व्यक्ति ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष का विकास करते हैं।

(4) प्रशिक्षार्थियों की नवीन उपागमों में रुचि होनी आवश्यक होती है। प्रकरण का उनसे सम्बन्ध होना चाहिए। कार्यशाला की प्रथम अवस्था के उपागम को बोधगम्य करने के लिए स्पष्टीकरण करना नितांत आवश्यक होता है। द्वितीयक अवस्था में जब उस उपागम का प्रयोग करने लगता है, उस समय जो उन्हें कठिनाइयाँ आती हैं, स्रोत व्यक्ति उनकी सहायता करता है। तृतीय अवस्था में जब वह अपने विद्यालय में जाता है तब उनका प्रयोग अपने छात्रों पर करता है और उनकी जाँच करता है तथा प्रभावशीलता का मूल्यांकन करता है।

किसी गोष्ठी प्रविधि एवं कार्यशाला प्रविधि में भाग लेने वालों की भूमिका में तुलना :

1. **अनुदेशक**–विचार गोष्ठी एवं कार्यशाला प्रविधि दोनों में अनुदेशक योजना तैयार करता है, प्रकरण का निर्धारण करता है, संभागियों का निर्धारण करता है, उन्हें बुलाने की व्यवस्था करता है, गोष्ठी की तिथियों का निर्धारण करता है। संभागियों को बुलाने एवं ठहराने आदि की व्यवस्था करता है। गोष्ठी स्थल का निर्धारण एवं उसकी व्यवस्था करता है। इस प्रकार दोनों ही प्रविधियों में अनुदेशक का उत्तरदायित्व अत्यन्त व्यापक होता है।
2. **वक्ता एवं विशेषज्ञ**–विचार गोष्ठी में अनुदेशक प्रकरण को तैयार करने एवं उसके प्रस्तुतीकरण के लिए वक्ताओं का निर्धारण करता है। वक्ता प्रकरण के सम्बन्ध में अपना प्रपत्र तैयार कर, उसकी प्रतिलिपि विचार गोष्ठी आरम्भ होने से पूर्व उनका वितरण कर देता है, इसके बाद वह अपने विचार प्रस्तुत करता है। कार्यशाला में अनुदेशक प्रकरण से सम्बन्धित विशेषज्ञों को आमंत्रित करता है। ये प्रशिक्षणार्थियों को प्रकरण के सम्बन्ध में जानकारी देते हैं।
3. **अध्यक्ष**–दोनों ही प्रविधियों में गोष्ठी के प्रारम्भ में अध्यक्ष का चयन किया जाता है। विचार गोष्ठी में अध्यक्ष का चयन इसमें भाग लेने वाले वक्ताओं द्वारा अपने में से किसी एक के चयन के रूप में किया जाता है। जबकि कार्यशाला में अध्यक्ष का चयन अनुदेशक के द्वारा किया जाता है। दोनों ही प्रविधियों में अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे प्रकरण अथवा समस्या का पूर्ण ज्ञान हो एवं वह अनुभवी हो।
4. **भागीदार**–विचार गोष्ठी में भागीदार वक्ताओं को सुनते हैं तथा प्रपत्र पढ़ते हैं तथा उसके आधार पर प्रकरण के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करके उसमें आई समस्याओं एवं कठिनाइयों को वक्ता तक पहुँचाते हैं। कार्यशाला में भागीदारों को प्रशिक्षणार्थियों की संज्ञा दी जाती है, इसमें प्रथम अवस्था में वे प्रकरण या समस्या से सम्बन्धित सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। द्वितीय अवस्था में सम्बन्धित प्रयोगात्मक कार्य करते हैं तथा तृतीय अवस्था में अपने विद्यालय में प्राप्त ज्ञान को अपने छात्रों पर प्रयोग कर उसकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करते हैं।

परिचर्चा तथा वाद-विवाद पर एक संक्षिप्त लेख लिखो।

उत्तर :

परिचर्चा
(Seminar)

यह विचार-विमर्श की ऐसी योजना है जिसका प्रयोग तब होता है जब सभी विद्यार्थियों को चुन लिया जाता है व उनको विषय के विभिन्न पक्षों पर तैयार होकर आने के लिए कह दिया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी कक्षा के सम्मुख आकर अपने विचार अभिव्यक्त करता है। अन्य कक्षा के विद्यार्थी उसके विचारों को सुनते हैं। इसमें अध्यक्षता शिक्षक ही करता है।

अन्त में विद्यार्थियों से परिचर्चा में अभिव्यक्त विचारों पर प्रश्न आमंत्रित करते हैं, जिनका उत्तर सम्बन्धित विद्यार्थी देते हैं। यदि आवश्यक हुआ तो शिक्षक भी प्रश्न का उत्तर देते हैं। अन्त में शिक्षक परिचर्चा पर अपने विचार प्रस्तुत करता है।

वाद-विवाद
(Debate)

अनेक विषय एवं समस्याएँ ऐसी हैं जो विवादास्पद हैं। उदाहरणार्थ "क्या भारत में जनाधिक्य है?" यह एक ऐसा विषय है जिस पर विद्यार्थियों के विचार पक्ष व विपक्ष में आमंत्रित किए जा सकते हैं। यह भी विचार-विमर्श का एक तरीका है। इसमें कुछ विद्यार्थियों को विचार के पक्ष में तथा कुछ विद्यार्थियों को विचार के विपक्ष में बोलने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। अध्यक्ष एवं संयोजक वाद-विवाद को संचालित करने हेतु कक्षा के सम्मुख बैठते हैं।

शिक्षक डिबेट की अध्यक्षता करते हैं। संयोजक बारी-बारी से पक्ष एवं विपक्ष के विद्यार्थी को विचार अभिव्यक्ति हेतु कहते हैं। अन्त में अध्यक्ष वाद-विवाद पर अपने विचार प्रस्तुत कर मूल्यांकन करता है। अध्यक्ष अपने विचारों से इस विवादास्पद विषय पर अवगत कराता है। अन्य विद्यार्थी सम्पूर्ण प्रक्रिया को ध्यानपूर्वक सुनकर अधिगम अर्जित करते हैं।

पत्राचार कार्यक्रम
(Correspondence Course)

☛ **पत्राचार कार्यक्रम से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी क्या आवश्यकता है? इसके गुणों और अवगुणों का वर्णन करें।**
("What do you mean by Correspondence Course? What is its need? Describe the merits and demesits of correspondence education.")

अथवा

☛ **पत्राचार कोर्सों के क्या लक्ष्य हैं? पत्राचार शिक्षा प्रदान करने की विधियां कौन-कौन सी हैं?**
("What are the objectives of correspondence Education? What are the methods of importing correspondence Education?)

अथवा

☛ **पत्राचार शिक्षा के लाभों और हानियों की व्याख्या कीजिए।**
(Discuss the advantages and disadvantages of Correspondence Education.)

उत्तर–शिक्षा एक बहुमुखी प्रक्रिया है। इस की व्यापकता को स्कूल की चार-दीवारी तक सीमित नहीं रखा जा सकता। इस की वास्तविक धारणा ने चार-दीवारी के भीतर चलने वाली शिक्षा-प्रक्रिया को पार करके अपनी परिधि को अधिक विस्तृत कर दिया है। **पत्राचार शिक्षण अथवा दूरस्थ शिक्षा** वस्तुतः शिक्षा की इस व्यापक धारणा का परिणाम है। यदि ध्यान से देखा जाए तो कहीं न कहीं कोई न कोई किसी न किसी को शिक्षा प्रदान कर रहा है। पिता जब अपनी सन्तान को पत्र लिखता है या कोई परदेसी आप को कुछ बताता

है–ये वास्तव में शिक्षा प्रदान करने के ही साधन हैं जो औपचारिक न होते हुए भी व्यक्ति के ज्ञानवर्द्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ज्ञान का विस्फोट, जन प्रसाधन के प्रयोग की बढ़ती हुई आवश्यकता तथा विज्ञान तथा टेक्नोलोजी के विकास के कारण दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता अनुभव होने लगी है ताकि व्यक्ति अपनी योग्यताओं को अधिक विकसित कर सके।

पत्राचार शिक्षा का अर्थ एवं धारणा
(Meaning and Concept of Correspondence Education)

दूरस्थ शिक्षा और विश्व में संस्थागत शिक्षा के विकल्प के रूप में स्वीकृत की जाती है ताकि उन लोगों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का दूसरा अवसर दिया जा सके जो किसी संस्था में प्रवेश लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। पत्राचार द्वारा प्राप्त की जाने वाली शिक्षा को दूरस्थ शिक्षा कहा जाता है। वस्तुतः यह ऐसी शिक्षा है जिसे व्यक्ति अपनी गति से और अपने समय के अनुसार प्राप्त करता है। इसके लिए न तो औपचारिक कक्षा की आवश्यकता होती है और न ही अध्यापक की औपचारिक उपस्थिति की आवश्यकता होती है। इस शिक्षण-पद्धति में शिक्षक तथा विद्यार्थी को आमने-सामने होने की आवश्यकता नहीं होती। विद्यार्थी की सभी कठिनाइयां तथा समस्याएं पत्राचार द्वारा सुलझाई जाती हैं। धीरे-धीरे यह पद्धति और अधिक विकसित होती जा रही है। अब यह केवल पत्राचार तक ही सीमित नहीं, बल्कि शिक्षार्थी को सम्पर्क कार्यक्रम (Contact Programmes) द्वारा मार्गदर्शन भी प्रदान किया जाता है तथा दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा दृश्य-श्रव्य साधनों की सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं। शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के बीच सम्पर्क स्थापित करने के लिए इन माध्यमों का प्रचुर प्रयोग किया जाता है।

एफ० रीव० एर्डोस (F. Revee Erdos) के कथनानुसार, "पत्राचार शिक्षण विधि ऐसी शिक्षण-विधि है जिसमें अध्यापक ऐसे विद्यार्थियों को ज्ञान और कौशल प्रदान करने का दायित्व सम्भालता है जो मौखिक रूप से शिक्षा नहीं प्राप्त करना बल्कि ऐसे समय तथा ऐसे स्थान पर शिक्षा प्राप्त करना चाहता है जो उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों के अनुरूप हों।"

("Corresponding teaching is a method of teaching in which the teacher bears the responsibility of importing knowledge and skill to a student who does not receive instruction orally but who studies in a place and at a time determined by his individual circumstances"– **F.R. Erdos**)

परन्तु एक बात को सदा ध्यान में रखना चाहिए कि पत्राचार-शिक्षा को घर पर पढ़ने या अपने आप पढ़ने का पर्याय समझना भूल है। पत्राचार शिक्षा में किसी संस्था या अधिकार को अस्तित्व अवश्य रहता है जो विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने का दायित्व सम्भालता है। दोनों में अन्तर स्पष्ट करते हुए इराडज (Erdos) का कथन है, "पत्राचार शिक्षण में किसी संस्था या व्यक्ति पर शिक्षा का दायित्व होता है। परन्तु गृह-अध्ययन अध्ययन के स्थान पर बल देने के कारण स्व-शिक्षण के अर्थ में ही लिया जाता है"।

(Correspondence teaching implies a teaching responsibility on the part of institution of person of fearing the service the term of home study with its emphasis place, of study is sometimes interpreted in the restricted sense of self instruction.")

प्रो०एस०एस० चिब (Prof S.S.Chib) के विचारानुसार पत्राचार शिक्षा में निहित आधारभूत दर्शन बहुत ही सरल है। इसमें निहित दर्शन इस प्रकार है–

(i) शिक्षा एक ही बार में समाप्त होने वाली प्रक्रिया नहीं बल्कि यह जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

(ii) कोई भी व्यक्ति इतना बूढ़ा, इतना शर्मिला, इतना बड़ा या छोटा नहीं होता कि किसी भी समय कुछ सीख न सके।

(iii) कोई भी व्यक्ति इतना ज्ञाता नहीं होता कि नये विचार, नई विधियां तथा धारणाएं न सीख सके।

(iv) किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय का नियमित विद्यार्थी न होना शिक्षा प्राप्ति में बाधक नहीं,

और सबसे बड़ी बात यह है कि–

(v) एक प्रौढ़ इस तथ्य के प्रति सचेत होता है कि न पढ़ने की उसे क्या हानि हुई। यदि वह सचेत नहीं है तो उसे सचेत किया जाना चाहिए।

दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता
(Need for Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता के कारण निम्नलिखित हैं–

(1) **जनसंख्या का विस्फोट (Population explosion)**—जनसंख्या वृद्धि के कारण विद्यार्थियों की संख्या में भी वृद्धि होना स्वाभाविक है। यद्यपि विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या को शिक्षित करने के लिए बहुत से स्कूल तथा महाविद्यालय खोले गए हैं, परन्तु फिर भी शिक्षा का व्यापक काम पूरा नहीं हो सकता। जितनी विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती है उसी अनुपात में शिक्षण संस्थान नहीं खोले जा सकते। अतः विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या को शिक्षित करने के लिए दूरस्थ शिक्षा आवश्यक है।

(2) **ज्ञान विस्फोट (Knowledge Explosion)**—आज के युग में ज्ञान इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि औपचारिक स्कूल तथा कालेज समस्त सामान्य जनता तक इसे नहीं पहुँचा सकते। अतः दूरस्थ शिक्षा अनिवार्य बन गई हैं।

(3) **आधुनिक जीवन की जटिलता तथा गतिशीलता (Complexity and mobility of modern life)**—आधुनिक जीवन अपेक्षाकृत अधिक जटिल तथा गतिशील हो गया है। लोगों को अच्छे व्यवसाय की खोज में एक से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। भारत जैसे विकासशील देश में व्यापार तथा औद्योगिक व्यवसाय कई गुणा बढ़ गया है। तथा इनका ढांचा और जटिल हो गया है। इस गतिशीलता के कारण अधिकांश लोगों के लिए किसी नियमित संस्था में प्रवेश प्राप्त करके शिक्षा प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। ऐसी स्थिति में दूरस्थ शिक्षा शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक सशक्त साधन है।

(4) **शिक्षा की प्राप्ति का अधिकार (Right of edcucation)**—प्राचीन काल में शिक्षा में सीमित व्यक्तियों के लिए सीमित दायित्व (Limited responsibility for limited population) आधार ही माना जाता था। परन्तु आधुनिक युग में शिक्षा अब कुछ चुने हुए लोगों का विशेषाधिकार नहीं रही। शिक्षा तो प्रत्येक नागरिक का लोकतान्त्रिक अधिकार है परन्तु कई विकासशील तथा विकसित देशों में शिक्षा की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के साधन नहीं है। ऐसी देशा में पत्राचार अध्ययन का कार्यक्रम विश्वविद्यालय में निहित सार्वजनिक साक्षरता तथा शिक्षण को विस्तृत एवं सशक्त बना सकता है।

(5) **कमाते हुए सीखना (Earning while learning)**—आधुनिक जीवन कठिन हो गया है। जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं इतनी महंगी हो रही हैं कि लोगों को कमाते हुए सीखना पड़ता है। इनके लिए नियमित महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। अतः अधिगम के लिए उन्हें सायंकालीन संस्थाओं या पत्राचार कोर्सों की शरण में जाना पड़ता है।

(6) **लचीलापन (Flexbility)**—आधुनिक युग में शिक्षा को एक सजावट की वस्तु ही नहीं, अपितु एक ठोस पूंजी समझा जाने लगा है। शिक्षा प्राप्त करने की इच्छुकों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है तथा इन इच्छुकों की आवश्यकताएं भी कई प्रकार की हैं। यह आवश्यकताएं नियमित शिक्षण संस्थाओं में लचीलापन कम होने के कारण पूरी नहीं हो सकती। अतः इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था करना आवश्यक है।

(7) **स्वतन्त्र शिक्षा की इच्छा (Describe for independent learning)**—स्वतन्त्र रूप से अपनी गति तथा अपने समय के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा ने लोगों का पत्राचार शिक्षा की ओर अग्रसर किया है।

(8) **शैक्षिणक योग्यता बढ़ाने की इच्छा (Desire for improving qualifications)**—आधुनिक जीवन में सभी तत्व निरन्तर जटिल हो रहे हैं। परिणामस्वरूप विभिन्न व्यवसायों की शैक्षिक योग्यताओं में परिवर्तन आ गया है। इन परिवर्तनों के अनुरूप अपनी शैक्षिणक योग्यता बढ़ाना प्रत्येक व्यक्ति की स्वभाविक इच्छा है। पत्राचार कोर्स विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित व्यक्तियों को अपनी शैक्षिणक योग्यताएं बढ़ाने के अवसर प्रदान करते हैं।

दूरस्थ शिक्षा के लाभ
(Advantages of Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा के बहुत से निम्नलिखित लाभ है–

(1) यह तुलनात्मक रूप से कम लागत पर शिक्षा प्रदान करने की उपयोगी विधि है। (It is a useful method of providing education compartively at a low cost)

(2) अब जब ज्ञान विस्फोट हो रहा है तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी जानकारी को नवीनतम रखना चाहता है। दूरस्थ शिक्षा उनकी उत्सुकता को शान्त रखती है।

(3) शिक्षा की यह तकनीक विद्यार्थियों को काम की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करती है।

(4) दूरस्थ शिक्षा भारत जैसे देश के लोगों के लिए बहुत उपर्युक्त विधि है जहां जनसंख्या विस्फोट की समस्या है और स्कूलों में कक्षाएं बहुत अधिक भीड़ वाली होती हैं।

(5) लोगों को शिक्षा देने के लिए यह बहुत अनुकूल तकनीक है।

(6) यह शिक्षा अवसरों को समान करने में सहायता करती है। जो लोग निर्धनता या किसी अन्य कारण से स्कूली शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते, शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हो जाते हैं।

(7) यह कमाना तथा सीखना दोनों को साथ-साथ प्रोत्साहित करता है।

(8) दूरस्थ शिक्षा उन लोगों के लिए लाभदायक है जिनके पास कोर्सों में नियमित विद्यार्थी के रूप में प्रवेश पाने लिए समय नहीं है।

(9) विभिन्न प्रकार के कोर्स जैसा कि शैक्षणिक, व्यावसायिक पेशागत, व्यवसाय उन्मुखी उद्योग से जुड़े सामान्य कोर्स आदि प्रदान करके बहुत से विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को दूरस्थ शिक्षा के केन्द्र को पूरा कर सकते हैं।

(10) दूरस्थ शिक्षा केवल उन द्वारा ग्रहण की जाती है जो इस में रुचि रखते हैं। इस प्रकार यह किसी भी प्रकार की अनुशासनहीनता की समस्या को उत्पन्न नहीं करेगा।

(11) बेरोजगारी की समस्या के कारण किसी भी प्रकार की निराशा, डर, भयानकता के वातावरण को यह नियन्त्रण में रखती है।

(12) तुलनात्मक रूप से लोगों की शिक्षा के लिए सरकार का खर्च बहुत कम होता है जो कि अन्यथा होता जब लोगों के लिए नियमित संस्थाएं प्रदान की जाती हैं।

दूरस्थ शिक्षा की हानियां
(Disadvantages of Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा की कुछ सीमाएं भी हैं जो निम्नलिखित हैं–

(1) यह शिक्षक एवं विद्यार्थी के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता प्रदान नहीं कर सकती।

(2) दूरस्थ शिक्षा में सभी विषयों के बारे में जानकारी सन्तुष्टिपूर्ण ढंग से नहीं दी जाती। इस प्रकार निपुणताओं वाले विषय प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं पढ़ाये जा सकते।

(3) अध्यापक विद्यार्थियों के लिए सजीव उदाहरण होता है। अध्यापक के व्यक्तित्व का सामान्य प्रभाव विद्यार्थियों पर नहीं पड़ता।

(4) प्रायः ऐसे कोर्सों में लाभ कमाना अधिकारियों का मुख्य उद्देश्य होता है। ऐसी स्थिति में दूरस्थ शिक्षा का लक्ष्य अधूरा छूट जाए ।

(5) व्यक्तिगत सम्पर्क कार्यक्रम (Personal contact programme) में प्रायः बहुत से बच्चों को पढ़ाया जाता है। ऐसे वातावरण में जो बच्चे संकोचों तथा शर्मीले स्वभाव के होते हैं वे कुछ अच्छा सीखने में असफल रहते हैं। इस प्रकार बहुत से विद्यार्थियों को निराशा होगी जो उनके लिए खतरनाक होगी।

(6) पाठों (Study material) में दी गई कुछ बातों को कुछ विद्यार्थी समझ लेंगे परन्तु कुछ अन्य इसे समझने में असमर्थ रहेंगे। ऐसे विद्यार्थियों की कमी कुछ समय तक चलती रहेगी जिसको तत्काल उपचार की आवश्यकता है।

(7) विद्यार्थियों द्वारा सीखने की क्रिया लगभग शैक्षणिक वातावरण में होती है। इसलिए हो सकता है कि उनका सीखना यथोचित न हो।

(8) विद्यार्थियों को सुनने एवं बोलने का अभ्यास बहुत कम करवाया जाता है। पढ़ने तथा लिखने की कला के लिए ये दोनों निपुणताएं स्तम्भ होती हैं। इस प्रकार विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा की नींव कमजोर रह जाती है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि दूरस्थ शिक्षा बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से सुनियोजित की गई अध्यापन तकनीक है। यह लोगों के लाभ के लिए चाल की गई है। इसे भारत जैसे देश में आश्चर्यजनक प्रगति करनी है। जहाँ निर्धनता एवं निरक्षरता लोगों की मुख्य समस्याएं हैं। इस प्रविधि के उच्च आदर्शों को मन में रखते हुए एवं फिर इस प्रविधि को बिना किसी स्वार्थपूर्ण उद्देश्य के लागू करना निश्चय ही लाभकारी होगा। इस प्रकार यह देश की बहुत सी समस्याओं को समाप्त कर देगी तथा समुदाय की ख्याति ऊंचे शिखर पर पहुँचा देगी।

दूरस्थ शिक्षा के लक्ष्य
(Objective of Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित हैं–

(1) **विद्यार्थियों के घरों तक ज्ञान पहुंचाना (Taking knowledge to the house hold of the students)**—हमारे देश में दूरस्थ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना उन विद्वान् प्रतिमाओं की इस इच्छज्ञ का प्रतीक है कि उनका ज्ञान प्रकाश विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की सीमाओं को पार करके उन व्यक्तियों तक पहुंच जाए जो उच्च शिक्षा की अभिलाषा रखते हैं।

(2) **शिक्षा के उच्चतम कार्य को सम्पन्न करना (To accomplish the highest function of education)**—दूरस्थ शिक्षा का लक्ष्य शिक्षा के उच्चतम कार्य को सम्पन्न करना है जो केवल ज्ञान प्रदान करने तक ही सीमित नहीं है बल्कि विद्यार्थियों को प्रेरित करना भी जिसमें सम्मिलित है।

(3) **सामान्य व्यक्तियों को ज्ञानवर्द्धन में सहायता प्रदान करना (To help common people in the equation of knowledge)**—दूरस्थ शिक्षा का एक और लक्ष्य सामान्य व्यक्तियों को ज्ञान वर्द्धन में सहायता प्रदान करना है ताकि वे विश्व के उपयोगी नागरिक बन सकें।

(4) **सतत शिक्षा के लिए (For containing education)**—उन व्यक्तियों के लिए सतत शिक्षा के द्वार खोलना जो अपने-अपने क्षेत्र में आधुनिकतम विद्यालयों में अवगत होना चाहते हैं।

(5) **समाज को स्कूल विहीन करना (Deschooling the society)**—दूरस्थ शिक्षा का लक्ष्य शिक्षा-संस्थानों को विद्यार्थियों के पास ले जाना। समाज को स्कूल विहीन (Deschooling the society) करने की धारणा का यही अर्थ है कि शिक्षण को स्कूल की सीमा से बाहर ले जाया जाए।

दूरस्थ शिक्षा का संचालन
(The Practice of Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा का संचालन निम्नलिखित चरणों के प्रभावशाली कौशल पर निर्भर हैं–

(1) पाठ-इकाइयों को आयोजित करना (Planning of the lesseon units)

(2) पाठ लिखना (Writing the lessons)
(3) पाठों का सम्पादन एवं प्रकाशन (Editing and printing the lessons)
(4) पाठों को भेजना (Despatch of Lessons)
(5) विद्यार्थियों का उत्तर पत्र (Students response sheets)
(6) वैयक्तिक सम्पर्क कार्यक्रम (Personal contact programme)

दूरस्थ शिक्षा प्रदान करने के लिए सहायक सामग्री (Aids for providing Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा में प्रत्यक्ष सम्पर्क का महत्त्व कम होता है तथा लिखित सामग्री (Study material) तथा रेडियो तथा टेलीविजन कार्यक्रमों को देखने और सुनने के लिए अधिक महत्त्व होता है। कई बार (Linguaphone) तथा (Teleconferences) का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की उच्च कोटि की सहायक सामग्री के प्रयोग से मितव्ययता (Economy) का सबसे बड़ा लाभ यह रहता है कि प्रत्येक संस्था के कुछ ही विद्यार्थियों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बहुत निपुण व्यक्तियों को बुलाने की आवश्यकता नहीं रहती। दूरस्थ शिक्षा में उच्च कोटि के योग्य व्यक्ति उच्च कोटि के योग्य व्यक्ति उच्च कोटि की निर्देशन सामग्री तैयार करते हैं। इस सामग्री को वे एक नमूने की जनसंख्या (Random sampling population) पर प्रयोग करके जनसाधारण के प्रयोग के लिए छाप देते हैं। इस प्रकार औपचारिक शिक्षा की तुलना में दूरस्थ शिक्षा अधिक मितव्ययी पड़ती है। प्राय देखा गया है कि दूरस्थ शिक्षा द्वारा शिक्षा लेने वाले विद्यार्थी को औपचारिक शिक्षा लेने वाले उन विद्यार्थी की तुलना में कम खर्च करना पड़ता है। एक तो विद्यार्थी का अपना घर छोड़कर प्रतिदिन शैक्षिक संस्था में जो घर से काफी दूर हो सकती है, जाने की आवश्यकता नहीं होती। उसे अध्ययन सामग्री घर बैठे-बैठे ही रेडियो, टेलीविजन तथा अन्य श्रव्य या दृश्य कैसेटों के द्वारा लाभ उठा सकते हैं। ऐसा देखने में आया है कि इस बात को तो सब लोग मानते हैं कि दूरस्थ शिक्षा संस्थाओं तथा विद्यार्थियों के दृष्टिकोणों से मितव्ययता है, परन्तु बहुत कम लोग इसे गुणात्मक कार्यक्रम के रूप में मान्यता देने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष पुनर्निवेशन (Feed back) की कमी है। इस प्रणाली में अध्यापक निर्देशन सामग्री तैयार करते हैं। इस सामग्री को विद्यार्थियों के पास भेज दिया जाता है। विद्यार्थी सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात् (Assignments) लिखकर डाक द्वारा अध्यापक को भेज देते हैं। बस यही देरी से की गई पुनर्निवेशन हैं क्योंकि अध्यापक इन Assignments की जांच-पड़ताल करता है तथा अपने विचार लिखकर विद्यार्थी को भेज देता है। इस कमी को दूर करने के लिए कुछ दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों में समय-समय पर कान्फ्रेंस (Conference) तथा सैमिनारों का भी आयोजन किया जाता है। कई क्षेत्रों में तो पत्राचार कार्यक्रम (Correspondence Course) सम्पर्क पत्राचार (Contact cum correspondence) कार्यक्रम बन गए हैं। बी० एड० तथा एम० एड० के रोहतक तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयों द्वारा चलाए गए पत्राचार कोर्स इसके प्रमाण हैं।

गणित क्लब (Mathematics Club)

☛ **गणित क्लब क्या है? संक्षेप में स्पष्ट करें।**

गणित क्लब एक ऐसा स्थान है जहां शिक्षार्थी अपना समय गणित करते हुए एक साथ गुजारते हैं और गणित का पूर्ण आनन्द उठाते हैं। यहां गणित से संबंधित छोटी-से-छोटी तथा बड़ी-से-बड़ी समस्या को गणित को enjoy करते हुए सुलझा लिया जाता है। ये क्लब छात्रों में गणित का महत्त्व तथा गणित के प्रति जागरूकता उत्पन्न करते हैं। यहां गणित पर चर्चा व ने के लिए मित्रतापूर्ण वातावरण तैयार किया जाता है। गणित हल करने के लिए अनौपचारिक व्यवस्था कर हैं। इन क्लबों में जब आप गणित नहीं भी कर रहे होते हैं तो भी सामाजिक होना अवश्य सीख रहे होते । इन क्लबों में गणित की समस्या तथा सिद्धांतों को हल

करने में प्रयुक्त समस्त साधनों की उपलब्धता होती है। गणित क्लबों में जाकर छात्र गणित के प्रयोग करने के विभिन्न तरीके सीख व खोज सकते हैं। क्लबों से छात्रों को गणित का महत्त्व ज्ञात होता है तथा खेलों व मानसिक गणित द्वारा दिमाग तेज होता है। इन क्लबों के माध्यम से शिक्षार्थी गणितीय सुन्दरता के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करते हैं।

गणित क्लब बच्चों में गणित को हल करने के प्रति जागरूकता उत्पन्न करते हैं, साथ ही उन्हें सभ्यता के विकास में गणित के महत्त्वपूर्ण योगदान से भी अवगत कराते हैं। गणित क्लब गणित के प्रति जागरूकता तथा जोश उत्पन्न करने में समर्पित रहते हैं। इन क्लबों में Campus discussion, यात्राओं तथा विभिन्न प्रतियोगिताओं और प्रस्तुतीकरण के माध्यम से गणित में रुचि उत्पन्न की जाती है।

गणित क्लबों के माध्यम से विद्यार्थियों में गणित के प्रति रुचि उत्पन्न होती है तथा वे सफलता की ऊँचाइयों पर पहुंचते हैं। यहां पर छात्र कक्षा-कक्ष के निर्देशों से अलग गणित को अपने जीवन का अभिन्न अंग समझते हुए सीखते हैं। इन क्लबों के माध्यम से विद्यार्थी गणित के प्रति समर्पित व्यक्तियों से जुड़ सकते हैं। गणित क्लबों के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. छात्रों की गणित में रुचि उत्पन्न करने में मदद करना।
2. छात्रों को गणित करने के लिए प्रोत्साहित करना।
3. गणित में होशियार छात्रों की संख्या में वृद्धि करने का प्रयास करना।
4. निराश युवकों व छात्रों को गणित में अपना भविष्य बनाने के लिए सलाह व उत्साह प्रदान करना।

गणित क्लब का संगठन करना आज एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है। मुख्यतः यह स्नातक अथवा उससे निचले स्तर पर तो अत्यंत आवश्यक है। जो छात्र गणित अध्ययन, अन्वेषण, सिद्धांतों और विश्लेषण में रुचि रखते हैं, उनके लिए अत्यंत उपयोगी है। इन क्लबों के माध्यम से छात्र गणित के प्रति उत्साहित होते हैं तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न खोजों, प्रतियोगिताओं और सेमिनार के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

ये क्लब अपने सदस्यों से अपेक्षा करते हैं कि वे अन्वेषण कार्यों में अपनी मदद प्रदान करेंगे।

☛ **गणित क्लब का संचालन, इसके द्वारा संचालित गतिविधियों तथा गणित क्लब की उपयोगिता का संक्षिप्त वर्णन करो।**

अथवा

☛ **गणित क्लब के महत्त्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।**

अथवा

☛ **गणित क्लब से आप क्या समझते हैं? गणित क्लब के मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए।**

उत्तर : गणित क्लब (Mathematics Club) : आजकल शिक्षा जगत में प्रत्येक विषय के समुचित विकास के लिए विषय संबंधी परिषदें बना दी गई हैं। परिषदों में छात्र तथा अध्यापक आपसी सहयोग के द्वारा विषय के विकास के लिए प्रयास करते हैं। परिषदों की सभाओं द्वारा अध्यापक तथा छात्र अधिक सम्पर्क में आते हैं, जिससे बालक और अध्यापक एक-दूसरे को समझ लेते हैं।

गणित के विकास के लिए भी गणित परिषद् का होना अनिवार्य है। परिषद् में सभापति, सचिव, कोषाध्यक्ष, पुस्तकालयाध्यक्ष आदि छात्रों में से चुन लिये जाते हैं। परिषद् को अपना वर्ष भर का कार्यक्रम अध्यापक के सहयोग से बना लेना चाहिये। उसी योजना के अन्तर्गत गणित में व्याख्यानमाला, गणित सम्बन्धी उपकरणों का ज्ञान, चित्र, रेखाचित्र, मॉडल आदि बनाने का समावेश होना चाहिये।

व्याख्यान माला में गणितज्ञों के जीवन चरित्र, इतिहास सम्बन्धी विकास, मनोरंजन सम्बन्धी तथा नवीन खोजों सम्बन्धी व्याख्यान, शाला के अध्यापक, छात्र तथा अन्य विद्यालयों के अध्यापक अथवा कॉलेज के प्रोफेसर आदि के होने चाहिए। मॉडल, उपकरण तथा चित्र बनाने सम्बन्धी ज्ञान व्याख्यानों द्वारा तथा उनको शाला में ही बनाने का प्रबन्ध होना चाहिये। ऐसा करने से बालकों में उत्साह बढ़ेगा तथा कार्य के प्रति रुचि

भी उत्पन्न होगी। वर्ष में एक बार गणित सम्बन्धी प्रदर्शनी भी गणित-परिषद् के तत्वावधान में आयोजित करनी चाहिये। इस प्रदर्शनी में छात्रों द्वारा तैयार किये गये मॉडल, चित्र, चार्ट, गणित-सम्बन्धी साहित्य आदि रखना चाहिये। इस प्रदर्शनी से शाला के छात्र तथा अन्य छात्र, अध्यापक तथा अन्य लोग भी लाभ उठा सकेंगे। इस प्रकार गणित-परिषद् गणित के विकास में सहायक सिद्ध होगी।

वर्तमान औपचारिक शिक्षा द्वारा गणित शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति करना नितांत असंभव है। इसके लिए हमें कुछ अनौपचारिक शिक्षा का सहारा लेना पड़ता है। जिसके लिए हम एक गणित परिषद् की स्थापना कर सकते हैं। गणित परिषद् की स्थापना करने की पहल शिक्षक व छात्र दोनों में से कोई भी कर सकता है। परन्तु अधिकांश शिक्षक ही इसकी पहल करता है। इसके बाद वह संस्था प्रधान से इसकी अनुमति प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह गणित में तीव्र बुद्धि वाले छात्रों को उसकी उपयोगिता बताता है। इसके बाद वह एक आम सभा कर परिषद् का औपचारिक गठन करता है। इसमें एक प्रेसीडेंट, एक वाइस प्रेसीडेंट, सचिव, कोषाध्यक्ष होता है। ये सभी एक शिक्षा सत्र के लिए होना चाहिए। शिक्षक स्वयं निर्देशक के रूप में कार्य करता है। गणित परिषद् का नाम इस प्रकार रखा जाना चाहिए कि उसमें गणितीय कार्यक्रमों से संबद्धता जाहिर हो सके।

संचालन–गणित परिषद् की सभा प्रत्येक शनिवार को इसके लिए निर्धारित कार्यक्रमों में अथवा छुट्टी के बाद की जानी चाहिए। यदि प्रत्येक सप्ताह संभव न हो सके तो 15 दिन में एक बार अवश्य ही सभा का आयोजन होना चाहिए। गणित परिषद् के सफल संचालन में जहाँ सदस्यों व आयोजकों के उत्साह व क्षमताओं की बात उठती है, वहाँ उचित कार्यक्रमों का चुनाव भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू बनकर सामने आता है। अतः इसके सफल संचालन के लिए उचित कार्यक्रम भी होने चाहिए।

गणित क्लब द्वारा संचालित गतिविधियाँ (Activities) :

1. अनुभवी गणितज्ञों को आमन्त्रित कर उनके विचार सुनना।
2. गणित परिषद् की पत्रिका या बुलेटिन प्रकाशित करना।
3. गणित संबंधी विभिन्न उपविषयों के बारे में चर्चा करना।
4. गणित पुस्तकालय व संगठन के संचालन में सभी तरह सहायता पहुँचाना।
5. गणित संबंधी सभी कार्यक्रम जो रेडियो, टेलीविजन आदि पर आते हैं, को छात्रों को दिखाने की व्यवस्था करना।
6. गणित संबंधी प्रदर्शनी, मेलों आदि का आयोजन करना।
7. गणित संबंधी विचार गोष्ठियों, कार्यशालाओं का आयोजन करना।
8. गणित संबंधी भित्ति पत्रिका का संचालन करना।
9. गणित के इतिहास से संबंधित विभिन्न गणितज्ञों की स्मृति व संबंधित घटनाओं के दिवस व उत्सव आयोजित करना।
10. गणित के विभिन्न विषयों में वाद-विवाद, अन्तःविद्यालय, कक्षा प्रतियोगिताओं का आयोजन करना।
11. गणितीय पहेलियों, समस्या, समाधान, खेलों आदि की प्रतियोगिता का आयोजन करना।
12. गणित संबंधी रुचिकर व मनोरंजक स्थानों की यात्राएँ व भ्रमण का आयोजन करना।
13. विभिन्न चार्ट, मॉडल, उपकरणों द्वारा प्रयोगशाला का निर्माण करना।

इस प्रकार गणित परिषद् की विभिन्न गतिविधियाँ, गणित शिक्षण के औपचारिक पक्षों का विशद विवेचन करती हुई गणित शिक्षण के उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश करती हैं।

अथवा

☛ **"अधिगम स्रोत के रूप में गणित मेला" पर टिप्पणी लिखो।**

उत्तर : गणित मेले एक अप्रयोगितात्मक (Non-competitive) समस्या समाधान घटना है जिसके माध्यम से अध्यापक अपने विद्यार्थियों को किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। गणित मेलों को किसी भी पाठ्यक्रम अथवा कक्षा में प्रयोग करके अपनाया जा सकता है। गणित क्लब में किये गये कार्यों व उपलब्धियों को गणित मेलों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। गणित मेलों के माध्यम से गणित के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों से छात्रों, अभिभावक तथा जनता को परिचित कराया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त इन मेलों के माध्यम से दूसरे स्कूलों को भी अपनी उपलब्धियों तथा कार्यक्रमों को दर्शाने का अवसर प्राप्त होता है। इन मेलों में मुख्य रूप से प्रदर्शनियों का प्रस्तुतीकरण होता है। इन प्रदर्शनियों में निम्न वस्तुओं का प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है।

1. गणितज्ञों की प्रेरक जीवनियां तथा मुख्य-मुख्य घटनाचक्रों का प्रस्तुतीकरण।
2. गणित के क्षेत्र में हुए विभिन्न खोजों व आविष्कारों का प्रस्तुतीकरण।
3. विद्यार्थियों द्वारा बनाये गये गणित के चार्ट, चित्र तथा रेखाचित्रों का प्रस्तुतीकरण।
4. विद्यार्थियों द्वारा संग्रहित किये गये विभिन्न पदार्थों एवं संसाधनों का प्रस्तुतीकरण।
5. विद्यार्थियों द्वारा निर्मित विभिन्न मॉडलों का प्रस्तुतीकरण।
6. अध्यापकों द्वारा स्वयं निर्मित गणितीय उपकरण तथा सामग्री का प्रस्तुतीकरण।
7. गणितीय सिद्धांतों पर आधारित गणितीय खेल व खिलौनों का प्रस्तुतीकरण।
8. पुराने व वर्तमान उपकरणों में आवश्यक सुधार करके बनाए गए उन्नत उपकरणों का प्रस्तुतीकरण।
9. विद्यार्थियों द्वारा निर्मित दैनिक जीवन संबंधी विभिन्न वस्तुओं का प्रदर्शन।
10. व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से किए गये गणित संबंधी विभिन्न प्रयोगों तथा उपयोगों का प्रस्तुतीकरण।
11. उन क्रियाकलापों तथा तथ्यों का प्रस्तुतीकरण जिनके माध्यम से गणित के कलात्मक, सौन्दर्यात्मक तथा कलात्मक पक्ष उजागर हो।
12. विद्यालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली अन्वेषणात्मक एवं अनुसंधानात्मक योजनाओं का प्रस्तुतीकरण।

गणित मेले में उपरोक्त कार्यों के प्रस्तुतीकरण के साथ ही गणित संबंधी और भी बहुत से कार्यक्रम रखे जा सकते हैं जोकि निम्नलिखित हैं–

1. अनुभवी व्यक्तियों के गणित आधारित व्याख्यान।
2. गणित के रोचक एवं महत्त्वपूर्ण विषयों पर वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन।
3. गणित विषय पर आधारित निबंध प्रतियोगिता का आयोजन।
4. गणितीय पहेलियों तथा दिमागी कसरतों का आयोजन।
5. महत्त्वपूर्ण गणितीय विषयों पर सामूहिक विचार गोष्ठी का आयोजन।
6. गणित तथा गणित से संबंधित विषयों की अच्छी पुस्तकों का प्रदर्शन।
7. गणित से संबंधित विभिन्न दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रदर्शन।
8. गणितीय फिल्मों का प्रदर्शन।
9. गणित शिक्षा अधिगम में सहायक कम्प्यूटर तकनीकों का प्रदर्शन।

चूंकि गणित मेलों का शैक्षणिक और प्रायोगिक महत्त्व है अतः आज इन्हें सभी के द्वारा प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT), शिक्षण महाविद्यालयों के सेवा विस्तार विभागों के सहयोग से जिला, प्रदेश और राष्ट्रीय स्तर पर गणित मेलों का आयोजन किया जाता है तथा इनके द्वारा उचित परामर्श एवं आर्थिक अनुदान भी प्रदान किया जाता है।

गणित मेलों को आयोजित करने के उद्देश्य

NCERT के अनुसार गणित एवं विज्ञान मेलों को आयोजित करने के निम्न उद्देश्य होने चाहिए–

1. युवाओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करके उनमें गणित विज्ञान तथा तकनीक की परख आत्मनिर्भरता की समझ उत्पन्न करना।
2. अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए विद्यार्थियों को उपयुक्त अवसर और प्रोत्साहन प्रदान करना।
3. विद्यार्थियों का विज्ञान संबंधी कामों के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर उन्हें आगे भी इसमें सहयोग देने के लिए तैयार करना।

4. भारत के भावी गणितज्ञों को पहचानने तथा उन्हें अपने पथ पर बढ़ते रहने का अवसर प्रदान करना।
5. गणित के विशेष मेधावी तथा प्रतिभावान छात्रों को प्रकाश में आने का अवसर प्रदान कर उनके उत्साह हमें वृद्धि करना।
6. विभिन्न क्लबों द्वारा किये जाने वाले कार्यक्रमों तथा उपलब्धियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करना।
7. जनसाधारण तथा विद्यार्थियों के अभिभावकों को स्कूल द्वारा आयोजित विभिन्न गणितीय मेलों से परिचित कराना।

गणित मेलों का आयोजन
(Organisation of Mathematics Fair)

गणित मेलों का आयोजन करते समय निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. गणित मेलों का आयोजन तथा उसकी व्यवस्था देखने के लिए बहुत पैसा खर्च करना पड़ता है। इसके लिए गणित अध्यापक को अपने मुख्याध्यापक तथा शिक्षा अधिकारियों से विचार-विमर्श करके मेले में भाग लेने वाली टीमों से प्रवेश शुल्क तथा दर्शकों से टिकट शुल्क लेकर आर्थिक समस्या को सुलझाना चाहिए।
2. आने वाली टीमों के ठहरने तथा मेले में किये जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की रूपरेखा पहले ही तैयार कर लेनी चाहिए।
3. मेला स्थल का चयन करते समय स्थान का ध्यान रखना चाहिए। मेले में आवागमन की व्यवस्था सुविधाजनक होनी चाहिए और दर्शकों तथा विभिन्न टीमों को स्थानाभाव के कारण कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।
4. मेरा स्थल पर सफाई और सुव्यवस्था होनी चाहिए। आवश्यकतानुसार प्रकाश और वायु की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. कार्यक्रम संबंधी सभी विवरण तथा भाग लेने के नियम तथा शर्तें आमंत्रण पत्रों में ही छपवा देने चाहिए तथा इन आमंत्रण पत्रों को उचित समय पर ही विभिन्न स्कूलों तथा संस्थाओं को प्रेषित कर देना चाहिए।
6. अध्यापक को अपने विद्यालय से भी छात्रों को अन्य विद्यालय में आयोजित मेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
7. मेले में आमंत्रित प्रत्येक टीम को अच्छी तरह स्थान मिला है या नहीं इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। उनके लिए आवश्यक फर्नीचर तथा प्रयोगशाला संबंधी सुविधाओं का उचित प्रबंध किया जाना चाहिए।
8. पीने के पानी की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। धोने एवं स्वच्छता संबंध कमरे जैसे बाथरूम, वॉशरूम आदि की भी उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
9. मेले में प्रदर्शित वस्तुओं को छुए बिना, सुविधानुसार देखने तथा बिना किसी असुविधा के दर्शकों को भीतर और बाहर ले जाने का उचित प्रबंध होना चाहिए।
10. गणित संबंधी व्याख्यानों, समूह वार्ताओं तथा चर्चा के लिए उचित विषयों का चयन किया जाना चाहिए।
11. दर्शकों को प्रदर्शित वस्तुओं के विषय में उचित प्रकार से समझाने के लिए अच्छी तरह प्रशिक्षित एवं योग्य विद्यार्थियों को नियुक्त किया जाना चाहिए।
12. अनुभवी गणित अध्यापकों, शिक्षाविदों तथा गणित प्रेमियों को ठीक समय पर व्यक्तिगत रूप से मिलकर आमंत्रित किया जाना चाहिए तथा जिस प्रकरण पर उन्हें विचार व्यक्त करने हों वो भी विचार-विमर्श करके पहले ही तय कर लेना चाहिए।

गणित प्रयोगशाला
(Mathematics Laborator)

☛ गणित प्रयोगशाला पर निबन्ध लिखिए।

अथवा

☛ गणित प्रयोगशाला क्या है? माध्यमिक स्तर पर अपने स्कूल में गणित प्रयोगशाला कैसे स्थापित करेंगे?

गणित एक तकनीकी विषय है जिसमें शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं होता, बल्कि प्राप्त ज्ञान का उपयोग कैसे किया जाए, यह ज्ञान प्राप्त करने से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लिए ज्ञान को क्रियात्मक रूप से प्राप्त करने तथा व्यवहारात्मक अनुभव प्राप्त कराने की अत्यन्त आवश्यकता होती हैं। अतः विज्ञान की तरह गणित की भी एक सुसज्जित प्रयोगशाला होनी चाहिए जहां कि विद्यार्थी गणित संबंधी प्रयोग तथा अनुभव प्राप्त करके गणित के तथ्यों, सिद्धान्तों एवं प्रत्ययों को ग्रहण कर सकने में समर्थ हो पाएं। प्रत्यक्ष तथा स्थूल सामग्री की सहायता से सूक्ष्म बातों को सीखने में बहुत सहायता मिलती है। क्षेत्रफल, ब्याज और बीजगणित तथा रेखागणित के विभिन्न सिद्धान्तों का निर्माण करने में आगमन तथा प्रयोगशाला विधि की सहायता लेनी पड़ती हैं। इन विधियों का ठीक प्रयोग प्रयोगशाला द्वारा ही संभव हैं।

प्रगतिशील गणितज्ञों का विचार है कि प्रत्येक स्कूल में दूसरी प्रयोगशालाओं के समान गणित विषय में भी प्रयोगशाला की स्थापना आवश्यक है। प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष अनुभवों तथा उपकरणों द्वारा छात्रों को जटिल प्रत्ययों, सिद्धान्तों एवं अमूर्त सम्बन्धों का प्रत्यक्ष ज्ञान दिया जा सकता है। गणित में मापन एवं गणनाओं सम्बन्धी क्रियाओं को करने के लिये उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इन उपकरणों के प्रयोग में दक्षता का विकास प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों द्वारा ही सम्पन्न होता है। गणना मशीन (Calculating Machine) की सहायता से छात्रों को गणना करने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त छात्रों को कक्षा के बाहर के कार्य (Field Work) करने के अवसर उपलब्ध कराना भी आवश्यक होता है। इसके अन्तर्गत इमारतों तथा स्तम्भों की ऊँचाइयाँ ज्ञात करने, खेतों को नापने, दौड़ने के ट्रैक बनाने, फुटबॉल, बास्केटबॉल के फील्ड बनाने, क्षेत्रफल तथा आयतन निकालने, पर्यवेक्षण (Survey) करने, नक्शा खींचने तथा उन्हें छोटा-बड़ा करने आदि कार्य कक्षा के बाहर कराये जाने चाहिये।

इन कार्यों को कराने के लिए सेक्सटैन्ट (Sextant), कोण-दर्पण (Angle Mirror), फीते (Tapes), प्रपोर्शनल डिवाइडर (Proportional Divider), क्लीनोमीटर (Clinometer), समतल-मापक (The Level) आदि प्रयोगशाला में उपलब्ध होने चाहिये। इसके अतिरिक्त स्लाइड रूल (Slide Rule), गोलक पटल (Spherical Blackboard), ड्राइंग बोर्ड, चाँदे, पैमाने और परकार, टी-स्क्वायर, ड्राफ्टमैन्स त्रिभुज, स्लाइडें (Slides), फिल्म, फिल्मस्ट्रिप आदि भी गणित की प्रयोगशाला के महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं। प्रयोगशाला में महान् गणितज्ञों के चित्र भी लगाये जाने चाहिये। साथ ही, गणित की मनोरंजक पहेलियाँ, गणित के खेल आदि भी गणित की प्रयोगशाला में संकलित कर रखे जा सकते हैं। गणित में प्रयोगशाला का प्रत्यय नवीन नहीं है। शिकागो (Chicago) विश्वविद्यालय के **प्रो. ई.एच. मुरे** ने 1902 में अमेरिकन मैथेमेटिक्स सोसाइटी को सम्बोधित करते हुए कहा था—

"छात्रों को अवलोकन शक्ति, प्रयोग एवं अभिव्यक्ति तथा निगमन शक्ति में प्रशिक्षित करना तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक कि गणित को सीधे ठोस स्वरूप से न जोड़ा जाये...तथा सुधार के इस कार्य को गणित व भौतिकी में सम्पूर्ण रूप से अनुदेशन की प्रयोगशाला विधि का विकास कहा जाता है।"

इसी प्रकार, 'A Handbook for Teachers of Basic School' में कहा गया है कि–"Nothing can impress pupils in the formative age as the actual visualising of these experiments in a graphic manner."

आदर्श गणित प्रयोगशाला का स्वरूप (Components for an Ideal Mathematics Laboratory)

एक अच्छी आदर्श गणित प्रयोगशाला के मुख्य तत्त्व इस प्रकार हैं–

1. **विभागीय सदस्य (Staffing)**–गणित अध्यापक या विभागाध्यक्ष और उसके विभागीय सदस्य विद्यालय कार्यक्रम के अन्तर्गत गणित प्रयोगशाला की स्थापना में सहायता करने हेतु इच्छुक एवं तैयार हों। प्रारम्भ में प्रयोगशाला स्थापना के समय विभाग के केवल एक या दो सदस्यों की आवश्यकता होती है, परन्तु प्रयोगशाला को गणित अधिगम केन्द्र के रूप में परिवर्तित करना सम्पूर्ण विभागीय सदस्यों के सहयोग के ऊपर निर्भर करता है।

2. **भौतिक सुविधाएँ (Physical Facilities)**–नवीन विद्यालयों में गणित प्रयोगशाला हेतु एक विशिष्ट स्थान होना चाहिये तथा उसकी योजना में समस्त सुविधाओं एवं दशाओं को स्थान प्रदान करना चाहिये। प्रयोगशाला कक्षा-कक्ष से जुड़ी हुई होनी चाहिए तथा परिवर्तनशील भाग के द्वारा उससे अलग की गई होनी चाहिए। इससे जब भी आवश्यकता पड़ेगी तो विस्तृत समूह अनुदेशन हेतु एक बड़ा भाग प्राप्त हो जाएगा। प्रयोगशाला 800 वर्गफुट की बड़ी कक्षा के रूप में होनी चाहिए।

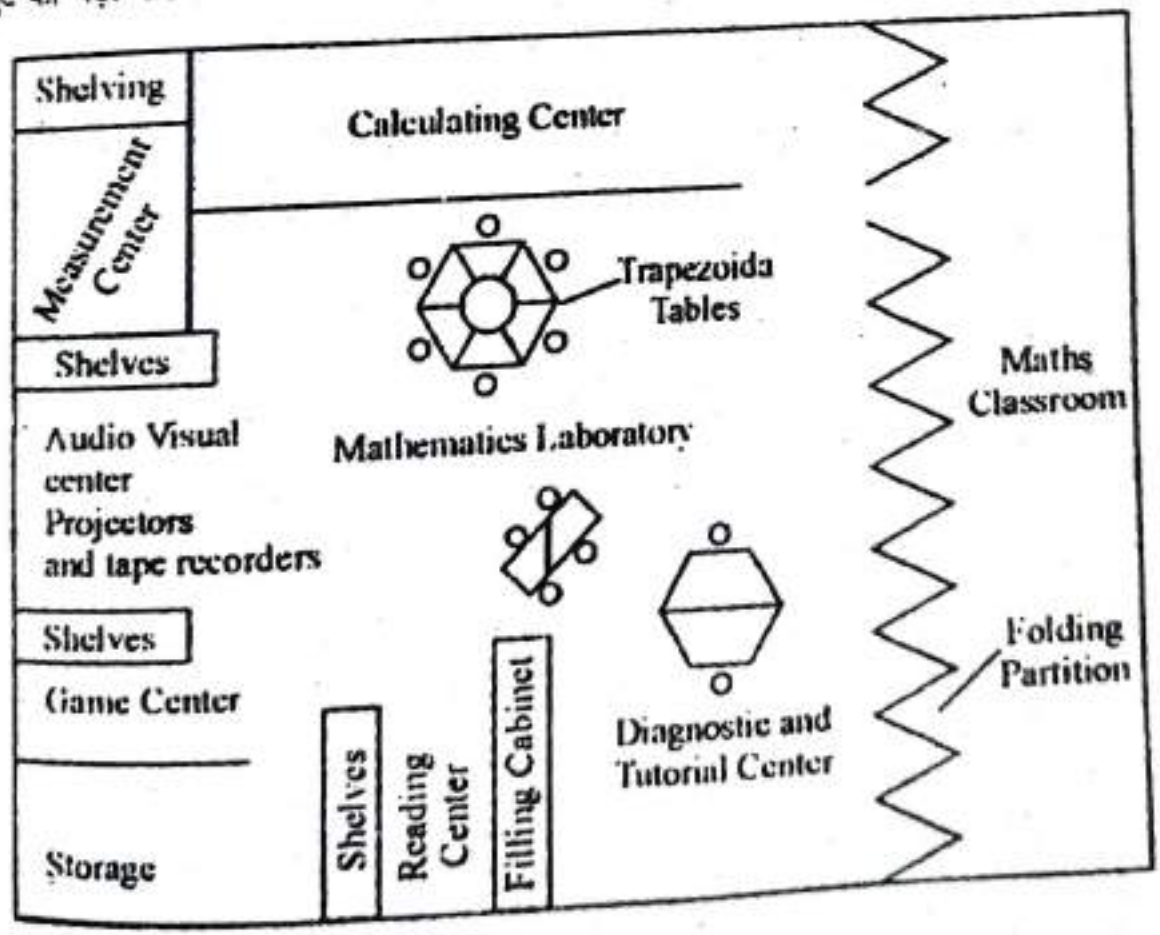

3. **फर्नीचर (Furniture)**–

(A) **गणना केन्द्र (Calculating Centre)**–दीवार के साथ दस इलैक्ट्रिक कैलकुलेटर के लिए मेज की ऊँचाई तक स्थायी, सुरक्षित स्थान होना चाहिए, जिससे छात्र व्यक्तिगत रूप से भी इनका प्रयोग कर सकें।

(B) **मापन केन्द्र (Measurement Centre)**—मापन केन्द्र में एक 30" × 70" माप की बहुउद्देशीय मेज होनी चाहिए।

(C) **खेल केन्द्र (Game Centre)**—खेल केन्द्र पर एक 30"× 70" माप की बहुउद्देशीय मेज रखी जाये।

(D) **पाठन केन्द्र (Reading Centre)**—पाठन केन्द्र पर नीचे कारपेट बिछा हो तथा एक आरामदायक सोफा या कुछ आराम कुर्सियाँ, एक छोटी व नीची मेज रखी जाये।

(E) **नैदानिक एवं ट्यूटोरियल केन्द्र (Diagnostic and Tutorial Centre)**—केन्द्र में तीन बड़ी मेजें पड़ी हों।

(F) कुल 30 कुर्सियाँ हों।

(G) कुल 15 बड़ी मेजें हों।

(H) **फाइल रखने की अलमारी**—कम से कम दो अलमारी हों तथा संसाधनों की आवश्यकतानुसार इनकी संख्या बढ़ायी जा सकती है।

(I) **अलमारियाँ**—गणित प्रयोगशाला में पाठन-सामग्री, कार्य-पुस्तिकाओं, किट्स, खेलों तथा अन्य सामान रखने हेतु उचित स्थान होना चाहिये।

(J) **स्टोर (Storage)**—यह या तो प्रयोगशाला का हिस्सा या उससे जुड़ा हुआ अलग कक्ष हो सकता है, परन्तु यह अति आवश्यक है।

(K) प्रयोगशाला में एक विशाल, स्थायी स्क्रीन (पर्दा) कक्षा के ऐसे भाग में होना आवश्यक है जहाँ विशाल समूह हेतु इसका प्रयोग किया जा सके।

उपकरण (Equipments) :

(A) **गणना केन्द्र (Calculating Centre)**—विद्युत केलकुलेटर। इसके अतिरिक्त इलैक्ट्रॉनिक केलकुलेटर, कम्प्यूटर टर्मिनल भी होना चाहिए।

(B) **दृश्य-श्रव्य सामग्री केन्द्र (Audio-Visual Centre)**—

- टेपरिकॉर्डर
- श्रवण स्टेशन (Listening Stations)
- ओवरहैड प्रोजेक्टर
- ट्रांसपेरेंसी मेकर
- पोर्टेबल स्क्रीन
- फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर
- फिल्म प्रोजेक्टर
- चार्ट
- मॉडल
- श्यामपट्ट
- बुलेटिन बोर्ड
- डिस्प्ले बोर्ड

(C) **खेल केन्द्र (Game Centre)**—विभिन्न खेल सामग्री।

(D) **मापन केन्द्र (Measurement Centre)**—विभिन्न मापन यन्त्र-फीता (Tape), मीटर (Metre Rod), भार मशीन (Weighing Machine) आदि।

(E) **सर्वे यन्त्र (Survey Instrument)**—गणित प्रयोगशाला में सर्वे सम्बन्धी बहुत से यन्त्र भी रखे जाने चाहिये। कुछ प्रमुख सर्वे सम्बन्धी यन्त्र इस प्रकार हैं—

(1) **कोण दर्पण (Angle Mirror)**—इस यन्त्र का उपयोग खेतों या मैदानों में समकोण का पता लगाने के लिये किया जाता है।

(2) **समतल मेज एवं एलीडेट (Plane Table and Alidate)**—इनका प्रयोग प्रारम्भिक नाप तथा सर्वे सम्बन्धी कार्य में किया जाता है।

(3) **हिप्सोमीटर तथा क्लीनोमीटर (Hypsometer and Clinometer)**—इन दोनों यन्त्रों का प्रयोग उन्नयन व अवनमन कोणों (Angle of elevation and depression) का माप करने के लिये किया जाता है। इन यन्त्रों का प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं की ऊँचाई व दूरी नापने के लिये भी किया जा सकता है।

(4) **लेवल (Level)**—इस यन्त्र की सहायता से झुकाव के अन्तर को ज्ञात किया जा सकता है।

(5) **ट्रांसिट (Transit)**—यह समकोण मापक तथा समतल करने वाला यन्त्र है।

(F) **अनुदेशनात्मक सामग्री (Instructional Material)** : गणित प्रयोगशाला हेतु अनुदेशन सामग्री के चयन के समय निम्न सामग्री प्रत्येक छात्र हेतु उपलब्ध होनी चाहिये–

(1) छात्र के व्यक्तिगत अभिलेख, प्रमुख रूप से निदान एवं प्रगति सम्बन्धी अभिलेखों को रखने की व्यवस्था।

(2) गणित में प्रगति के मापन हेतु उपलब्धि परीक्षण।

(3) गणना कौशल विकास सामग्री, जैसे–कार्यपुस्तक (Work Book), कैलकुलेटर आदि।

(4) समस्या-समाधान सामग्री, जैसे–वास्तविक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का संकलन एवं अन्य व्यावसायिक सामग्री।

(5) छात्रों की कमजोरियों को दूर करने के लिए निदानात्मक परीक्षणों की व्यवस्था।

(6) प्रत्येक छात्र से सम्बन्धित अभिलेख तैयार करना, जैसे–पढ़ाई का स्तर, समस्या समाधान में उपलब्धि का स्तर, गणना सम्बन्धी कुशलताओं का स्तर तथा मापन सम्बन्धी उपलब्धियों का स्तर।

(7) आवश्यक तथा प्रभावी दृश्य सामग्री, जैसे–चार्ट, मॉडल, विभिन्न प्रकार की ज्यामितीय आकृतियाँ आदि।

(8) लघुगणक सारणियाँ एवं त्रिकोणमितीय अनुपातों एवं कोणों की सारणी आदि।

(9) ड्राइंग सम्बन्धी उपकरण–पटरी, परकार, पैन्सिल, सैट-स्क्वायर (Set-squares) आदि।

गणित शिक्षण में प्रयोगशाला का महत्त्व एवं आवश्यकता (Need and Importance of Laboratory in Mathematics Teaching)

गणित शिक्षण में प्रयोगशाला का महत्त्व निम्नलिखित कारणों से है–

(1) प्रयोगशाला में बालक स्वयं करके सीखते हैं (Learning by Doing) जिससे उनका ज्ञान अधिक स्थायी हो जाता है।

(2) इसके द्वारा बालक क्रियात्मक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(3) प्रयोगशाला में कार्य करते समय छात्र गणित के अध्ययन में अधिक रुचि लेते हैं।

(4) प्रयोगशाला के द्वारा छात्रों में रचनात्मक एवं अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है।

(5) छात्र गणित के प्रयोग करने में आनन्द की अनुभूति करते हैं क्योंकि प्रयोग करने से उनकी जिज्ञासाओं की सन्तुष्टि होती है।

(6) छात्रों की विभिन्न प्रकार की गणितीय कुशलताओं का विकास होता है, जैसे–आकृति, चित्र, मॉडल बनाने की कुशलता, माप-तोल की कुशलता आदि।

(7) छात्रों में आगमनात्मक (Inductive) चिन्तन (Thinking) का विकास होता है।

(8) छात्रों में आत्मविश्वास, आत्म-निर्भरता, परिश्रम तथा प्रयोग करने की योग्यता का विकास होता है।

(9) छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Attitude) विकसित होता है।

गणित प्रयोगशाला में कार्य करते समय सावधानियाँ (Precautions to be Taken)

गणित प्रयोगशाला में कार्य करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिये–

(1) प्रयोग में लाये जाने वाले उपकरण या सामग्री के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी होनी चाहिये।

2016

कुछ महत्त्वपूर्ण प्रक्षेपी सामग्री
(Some Important Projective Aids)

निम्नलिखित में से किसी एक प्रक्षेपी सामग्री की उपयोगिता पर अपने विचार व्यक्त करें :

1. शिरोपरी प्रक्षेपी/ओवरहैड प्रोजेक्टर (Overhead Projector)
2. स्लाईड प्रोजेक्टर (Slide Projector)
3. एपिडॉयस्कोप (Epidiascope)

उत्तर :

1. शिरोपरी प्रक्षेपी/ओवरहैड प्रोजेक्टर (Overhead Projector)

विद्यार्थियों के समक्ष सहायक सामग्री पेश करने के लिए इसे सबसे प्रभावी साधन माना जाता है। इसका प्रयोग करते हुए चॉकपट्ट की आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रोजेक्टर का नाम ओवर हैड प्रोजेक्टर इसलिए पड़ा है क्योंकि यह प्रतिविम्ब या चित्रांकन को अध्यापक के पीछे सिर के ऊपर बनाता है। इसके द्वारा दोनों प्रकार के प्रतिविंबों–शाब्दिक एवं चित्रित को पर्दे पर दर्शाया जा सकता है। ओवरहैड प्रोजेक्टर में पाठ्य-वस्तु से संबंधित विभिन्न ट्रांसपेरेन्सिज (Transparencies), जो पहले से ही तैयार की जाती है का उपयोग करने हेतु उन्हें दीवार या पर्दे पर प्रक्षेपित किया जाता है। पढ़ाते समय अध्यापक द्वारा अपनी मेज पर ही इस

उपकरण को रखा जाता है एवं आवश्यकतानुसार प्रक्षेपित सामग्री को दीवार या पर्दे पर प्रक्षेपित करते हैं। विद्यार्थियों को आसानी से समझाया जा सकता है।

इसमें प्रयुक्त ट्रांसपेरेन्सिज पर अंकित संदेश/चित्र/ग्राफ/सूत्र मार्कर पेन जो बाजार में आसानी से उपलब्ध हो सकता है, की सहायता से बनाया एवं लिखा जा सकता है। ओवरहैड प्रोजेक्टर द्वारा 18 × 22 से.मी. आकार की ट्रांसपेरेंसी को तैयार करने के उपरांत प्रक्षेपण द्वारा 1.5 मी. × 1.5 मी. आकार में परिवर्तित किया जा सकता है। ओवरहैड प्रोजेक्टर धातु का बना होता है तथा इसमें 1000 वॉट का लैम्प और एक कन्केव रिफ्लैक्टर लगा होता है। एक ओर कन्डैंसर लैंस भी होता है, जो ट्रांसपेरेंसी समतल शीशे पर लगाने के उपरांत रोशनी प्रदान करता है।

इसमें एक लंबी छड़ लगी होती है। कन्वैक्स लैंस ट्रांसपेरेंसी के समांतर और एक साफ दर्पण जो परिवर्तित होकर पर्दे पर चित्र बनाता है। औबजैक्टिव लैंस और दर्पण के सम्मिलन द्वारा स्लाईड ऊपर-नीचे हो सकता है जो एक पेंच द्वारा उचित केंद्रण पर काम करता है। इसमें एक इक्जॉस्ट (Exaust) पंखा भी लगा होता है जो लैंप द्वारा पैदा की गई गर्मी को बाहर निकालता रहता है।

ओवरहैड प्रोजेक्टर में प्रयोग की जाने वाली ट्रांसपेरेंसी पर अंकित किए गए शब्दों एवं अंकों का आकार 6 सेंमी. से कम नहीं होना चाहिए। कक्षा-कक्ष में यदि दो मीटर का पर्दा लगाया गया है तो इस बात का ध्यान रखना है कि अंतिम लाईन में बैठे विद्यार्थियों की दूरी 12 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए।

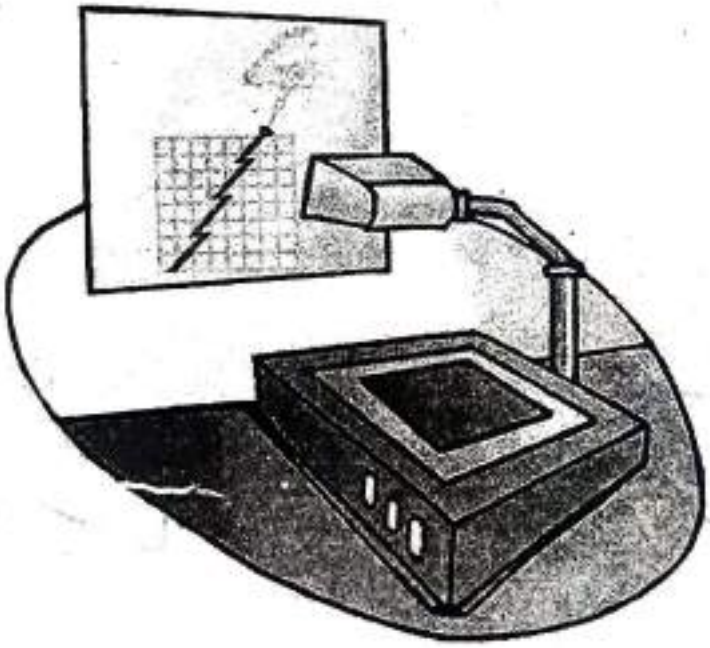

ओवरहैड प्रोजेक्टर

ओवरहैड प्रोजेक्टर के उपयोग (Uses of Over Head Projector) : ओवरहैड प्रोजेक्टर कम वजन होने के कारण अध्यापक इसको कक्षा में प्रदर्शन मेज पर रखते हुए सुविधाजनक रूप से प्रयोग में ला सकता है। इसके उपयोग हेतु डार्क रूम की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसको भारी-भरकम कक्षा में भी अच्छी प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है। ओवरहैड प्रोजेक्टर द्वारा किसी भी छोटी वस्तु को बड़ा करके दिखाया जा सकता है। इसका संचालन बहुत सरल होता है। विद्युत बटन को दबाना, ट्रांसपेरेंसी को शीशे पर रखना तथा पर्दे पर आकृति को फोकस करना ये तीनों कार्य सम्पन्न करते हुए इसका संचालन किया जा सकता है। पारदर्शी शीट (Transparency) को पहले से ही तैयार कर लिया जाता है, आवश्यकता पड़ने पर प्रस्तुत किया जाता है। उद्देश्य पूर्ण होने पर हटा लिया जाता है। पारदर्शी शीट कम समय और कम लागत से तैयार की जा सकती है। एक बार तैयार करने के बाद कभी भी, कहीं भी उसका प्रयोग किया जा सकता है। इसके द्वारा अध्यापक पाठ के मुख्य बिंदुओं को समझाने हेतु एक संकेतक का प्रयोग भी कर सकता है। कक्षा में अनुशासन की दृष्टि से यह उपयोगी है क्योंकि अध्यापक को चॉकपट्ट की ओर नहीं भागना पड़ता।

OHP का प्रयोग करते समय सावधानियां (Precautions while using OHP) :

(i) कपड़े की सहायता से प्रक्षेपित शीशे एवं बाहरी लैंप के ऊपर से मिट्टी को साफ कर लेना चाहिए।
(ii) बल्ब को हाथ से नहीं छूना चाहिए।
(iii) इसको चलाते समय देख लेना चाहिए कि यांत्रिक कंपन तो नहीं हो रही है।
(iv) इसे हमेशा सीधा रखना चाहिए और समय-समय पर एक्जॉस्ट फैन (Exaust Fan) की तरफ देखना चाहिए कि वह चालू हालत में है।
(v) इसे ज्यादा लंबे समय तक चालू नहीं रखना चाहिए।

2. स्लाईड प्रोजेक्टर (Slide Projector)

स्लाईड प्रोजेक्टर यंत्र को रूपरेखा परवर्तक भी कहा जाता है। इसका प्रयोग चुंबकीय आकृति के परिवर्तन हेतु स्लाईड द्वारा पर्दे पर विद्यार्थियों को दिखाने के लिए किया जाता है। यह एक उच्च विद्युत लैंप के द्वारा कार्य करता है। बल्ब को एक डिब्बे में रखा जाता है और इसके पीछे एक परावर्तक लगा होता है। परावर्तक (Lens) के आगे दो प्लेन कॉन्वैक्स लगे होते हैं। इन दोनों लैंसों का सम्मिलन होता है जो कि एक कन्डैन्सर के नाम से पहचाना जाता है। कन्डैन्सर के आगे एक स्लाईड होल्डर होता है, जिसमें स्लाईड लगाई जाती है।

स्लाईड प्रोजेक्टर की उपयोगिता (Uses of Slide Projector) :

(i) यह विषय में विद्यार्थियों की रुचि जाग्रत करने एवं बनाए रखने में सहायक होता है।
(ii) यह कक्षा में बड़ी संख्याओं में छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध होता है।
(iii) इन्हें विचार विमर्श के लिए अधिक समय तक पर्दे पर रखा जा सकता है।
(iv) यह कक्षा में सृजनात्मक, अनुशासन बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है।
(v) इसके प्रयोग द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकता है।
(vi) इसका प्रयोग पाठ की प्रस्तावना, पाठ्य-सामग्री के प्रस्तुतीकरण एवं पुनरावृत्ति में किया जा सकता है।
(vii) अध्यापक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में इसके द्वारा विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी बनाने में सफल हो सकता है।
(viii) ये रंगीन चित्रों को दर्शाने के लिए सबसे अच्छा माध्यम है।

स्लाईड प्रोजेक्टर का उपयोग करते समय सावधानियां (Precautions while using Slide Projector) :

(i) स्लाईडों को उचित क्रम में लगाना चाहिए।
(ii) इसका प्रयोग करने से पहले विद्युत सप्लाई की जांच कर लेनी चाहिए।
(iii) इसका प्रयोग डार्क रूम में करना चाहिए।
(iv) ये एक दृश्य सामग्री है इसलिए अध्यापक को साथ-साथ व्याख्या भी करते देखना चाहिए।
(v) प्रदर्शन करते समय स्लाईड प्रोजेक्टर को बीच में रोककर विद्यार्थियों को वाद-विवाद करने की अनुमति देनी चाहिए।
(vi) आवश्यकता न होने पर इसको बंद कर देना चाहिए।
(vii) इसका प्रयोग करने से पहले अध्यापक विषय की उचित भूमिका तैयार करते हुए विद्यार्थियों को पूर्ण जानकारी प्रदान करे।

3. एपिडॉयस्कोप (Epidiascope)

एपिडॉयस्कोप दो शब्दों के मेल से बना हुआ है–

(i) **एपिस्कोप :** जिसका अर्थ है अपारदर्शक वस्तु का पर्दे पर प्रक्षेपण।

(ii) **डॉयस्कोप** : डॉयस्कोप, जो स्लाईड को पर्दे पर प्रक्षेपित करे।

अतः एपिडॉयस्कोप के द्वारा पारदर्शक एवं अपारदर्शक दोनों प्रकार की वस्तुओं को पर्दे पर प्रक्षेपित किया जाता है। इसके माध्यम से जो भी आकृति, वस्तु का जैसा रंग-रूप एवं आकार होता है, वह वैसी ही पर्दे पर दिखाई देती है।

एपिडॉयस्कोप की उपयोगिता (Uses of Epidiascope) :

(i) एपिडॉयस्कोप द्वारा पारदर्शक एवं अपारदर्शक दोनों ही प्रकार की सामग्री को पर्दे पर आसानी से प्रक्षेपित किया जा सकता है।

(ii) आवश्यकतानुसार एपिस्कोप या डॉयस्कोप को किसी भी प्रकार से प्रयोग में लाया जा सकता है।

(iii) इसके प्रयोग से शिक्षण कार्य रुचिकर बन जाता है।

(iv) किसी भी प्रक्रिया का क्रमिक विकास जैसे—संख्या पद्धति, समुच्चय, मिट्रिक पद्धति आदि को प्रदर्शित करने के लिए एपिडॉयस्कोप द्वारा दिखाई जाने वाली स्लाईडों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है।

(v) इसमें चित्र आदि का जो प्रक्षेपण पर्दे पर होता है, वह स्थिर रहता है। इसलिए कक्षा में किसी भी समय और कितनी ही देर तक इसे विद्यार्थियों के समक्ष दिखाया जा सकता है।

(vi) जीव विज्ञान में छोटे-छोटे जीव-जंतुओं के सूक्ष्म भागों को बड़ा करके इसके द्वारा दिखाया जाता है।

एपिडॉयस्कोप के प्रयोग में सावधानियां (Precautions while using Epidiascope) :

(i) एपिडॉयस्कोप का प्रयोग अंधेरे कमरे में करना चाहिए।

(ii) इसका प्रयोग करते समय कक्षा में वातावरण शांत होना चाहिए।

(iii) अध्यापक को पहले से ही ज्ञात होना चाहिए कि कौन-कौन से प्रकरणों में इसका प्रयोग प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है ताकि प्रयोग करते समय परेशानी ना उठानी पड़े।

(iv) इसका प्रयोग करते समय अध्यापक को व्याख्या भी करनी चाहिए ताकि विद्यार्थियों को विषय से संबंधित स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो सके।

(v) इसका प्रयोग करने से पहले कक्षा में पर्दे की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

(vi) दिखाए जाने वाले चित्रों को आकार, चित्र एवं सूची के अनुसार होना व्यवस्थित करना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को समझाने में कठिनाई न हो।

(vii) लिखित भाषा में छात्र सामान्यतः त्रुटियां करते हैं, उन्हें एपिडॉयस्कोप की सहायता से कक्षा में दिखाया जाना चाहिए।

2016

कुछ महत्त्वपूर्ण गैर–प्रक्षेपी सामग्री
(Some Important Non-Projective Aids)

☛ **निम्न सहायक साधनों के गणित शिक्षण में प्रयोग के विषय में अपने विचार व्यक्त करें :**

1. चार्ट,
2. चॉकपट्ट,
3. फ्लैनल बोर्ड,
4. मॉडल।

उत्तर :

1. चार्ट
(Chart)

चार्ट गणित शिक्षण में प्रयोग की जाने वाली महत्त्वपूर्ण दृश्य अनुदेशनात्मक सहायक सामग्री है।

(Visual Instructional Material)। चार्ट एक साधारण समतल चित्र युक्त प्रदर्शित सामग्री है और यदि इसका उचित प्रयोग किया जाए तो ये सूचना को प्रभावशाली ढंग से पेश करता है। शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर चाहे वह पूर्व ज्ञान परीक्षा, प्रस्तावना, प्रस्तुतीकरण, पुनरावृत्ति, गृहकार्य अथवा अभ्यास करने से हो, चार्ट अध्यापक को उसके कार्य में सहायता प्रदान करते हैं। चार्ट विभिन्न प्रकार की प्रदर्शित सामग्री की ओर संकेत करता है।

- चार्ट रेखाचित्र बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार की ज्यामिति आकृतियों को दर्शाया जाता है।
- भावी अध्यापकों द्वारा तैयार किए गए विभिन्न रेखाचित्रों के प्रदर्शन हेतु इसकी सहायता से संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार की सूचनाओं, तथ्यों एवं आंकड़ों को भली-भांति चित्रात्मक या ग्राफिक सामग्री के रूप में विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

चार्ट का प्रयोग शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर किया जाता है। चार्ट स्वयं एक ऐसी सहायक सामग्री है जो सिद्धांतों, नियमों, वस्तुओं एवं सूत्रों का प्रतिनिधित्व करने के स्थान पर उनकी व्याख्या करता है। चार्ट की सहायता से विद्यार्थियों को प्राप्त होने वाला ज्ञान सरल, रोचक तथा स्थाई होता है। ये महत्त्वपूर्ण सूचनाओं के वर्गीकरण करने का प्रभावशाली स्रोत है। ये कठिन आंकड़ों के साथ-साथ विचारों का संक्षिप्तीकरण और सरल बनाने में सहायक होते हैं। ये विद्यार्थियों का ध्यान केंद्रित करने, रुचि जाग्रत करने तथा अनुदेशात्मक कार्य करने के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। चार्ट क्रमबद्ध चिंतन तथा बौद्धिक सूझबूझ की प्रक्रिया को बढ़ावा देते हैं। भावी अध्यापक विषय सामग्री को कक्षा के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु चार्ट की सहायता से समय एवं शक्ति की बचत कर सकता है।

चार्ट के प्रकार (Types of Charts) : विषय सामग्री के प्रस्तुतीकरण की शैली के आधार पर चार्टों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

(i) **तालिका चार्ट :** तालिका चार्ट के माध्यम से तथ्य एवं सूचनाओं को तालिका के रूप में पेश किया जाता है। इस चार्ट में कई प्रकार के भाग बनाकर विचारों, घटनाओं तथा विवरणों को क्रमानुसार व्यवस्थित किया जाता है। विद्यालय की समय सारणी तालिका चार्ट का सबसे अच्छा उदाहरण है।

(ii) **वृक्ष चार्ट :** इन चार्टों में बनी आकृतियां वृक्ष की भांति होती हैं। वृक्ष का मुख्य तना किसी संगठन को प्रदर्शित करता है, वहीं शाखाओं द्वारा उसके बहुआयामी विकास को दर्शाया जाता है।

(iii) **समय चार्ट :** इस चार्ट द्वारा घटनाओं के कालक्रम को दर्शाया जाता है। किसी भी प्रक्रिया के विकास हेतु महत्त्वपूर्ण घटनाओं को इनमें कालक्रम के आधार पर पेश किया जाता है।

(iv) **चित्र चार्ट :** चित्र चार्ट में पढ़ाई जाने वाली विषय-वस्तु को आलेख, ग्राफ, चित्रों, रेखाकृतियों, खाकों तथा शब्दों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। अध्यापक द्वारा सबसे अधिक चित्र चार्ट का प्रयोग किया जाता है।

(v) **वृत्ताकार चार्ट :** इन चार्टों में वृत्त को आंकड़ों के आधार पर भागों में विभाजित किया जाता है। वृत्त का प्रत्येक भाग प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है या इनको अलग-अलग रंगों के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

चार्ट निर्माण की सामग्री (Material used in Preparing of Chart) : चार्ट बनाने हेतु एक मजबूत ड्रॉईंग शीट ली जाती है, जिस पर विभिन्न रंगों, पैंसिलों, स्टैंसिल, पैमाना आदि का प्रयोग किया जाता है। चार्ट बनाते समय उसी स्याही का उपयोग करना चाहिए, जो फैले न।

चार्ट के उचित प्रयोग हेतु सुझाव (Suggestions for the use of Chart) :

(i) चार्ट द्वारा निश्चित उद्देश्यों का वर्णन किया जाना चाहिए।
(ii) चार्ट पर दर्शाई गई पाठ्य सामग्री सरल, स्पष्ट एवं छात्रों की सूझबूझ के अनुसार होनी चाहिए।
(iii) चार्ट को उचित समय पर प्रदर्शित किया जाना चाहिए।
(iv) चार्ट आकर्षक होना चाहिए।

(v) चार्ट उचित समय पर उपयोग में लाने के उपरांत हटा एवं ढक देना चाहिए।

2. चॉकपट्ट (Chalk Board)

चॉकपट्ट एक ऐसी आकृति है जो लड़की, प्लाईवुड, गत्ते, सीमेंट तथा धातु के टुकड़ों से निर्मित की जाती है जिस पर आवश्यकतानुसार चित्रों, अंकों एवं शब्दों को अंकित किया जाता है। झाड़न (Duster) का प्रयोग करके उसे दोबारा साफ किया जा सकता है। चॉकपट्ट को गणित शिक्षक का दायां हाथ माना जाता है।

चॉकपट्ट के प्रकार (Types of Chalk Board) : चॉकपट्ट के प्रकारों का विवरण निम्नलिखित है–

(i) **दीवारी चॉकपट्ट :** यह चॉकपट्ट मुख्यतः कक्षा की दीवार पर बना होता है। इसके अलावा यह अन्य किसी भी दीवार पर बनाया जा सकता है। यह प्रायः स्लेटी पत्थर एवं मसाले से निर्मित होता है। बाद में इस पर काले रंग का पेंट कर दिया जाता है। इसको निर्मित करने में निम्न सावधानियां ध्यान रखनी चाहिए–

- कक्षा की उचित दीवार का चयन हो।
- चॉकपट्ट की ऊंचाई उचित हो।
- रोशनी की व्यवस्था ऐसी हो ताकि स्पष्ट रूप से दिखे।
- चॉकपट्ट बनाने में उच्च कोटि का सामान इस्तेमाल हो।
- उचित समय एवं अंतराल पर उस पर रोगन करें।
- कक्षा के अनुरूप ही उसकी लंबाई-चौड़ाई निर्धारित करें।

(ii) **लकड़ी का चॉकपट्ट :** यह लकड़ी का बना होता है। इसको स्टैण्ड के द्वारा आवश्यकतानुसार ऊंचा तथा नीचा किया जा सकता है। इनका प्रयोग निम्न कक्षाओं में ही उचित है।

(iii) **चॉक-पट्टिकाएं :** यह कपड़े के बने काले रंग के होते हैं जिन्हें लपेटा जा सकता है। इसके ऊपर तथा नीचे मुख्यतः डंडे या पाईप का प्रयोग किया जाता है। इसको दीवार पर टांगा जाता है। अध्यापन अभ्यास के लिए यह अति महत्त्वपूर्ण है।

(iv) **चुम्बकीय बोर्ड :** यह इस्पात से निर्मित होता है जिस पर चुम्बक की सहायता से चित्रों, अक्षरों, शब्दों, आकृतियों को चिपकाया जाता है। पाठ में रोचकता तथा अभ्यास आदि के लिए इसका प्रयोग महत्त्वपूर्ण बन जाता है। इसके प्रयोग से समय की बचत के साथ-साथ विषय को सरलता तथा रोचकता के साथ विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है। चॉक पाऊडर से होने वाले हानिकारक प्रभावों से इसके माध्यम से छुटकारा मिल जाता है, परंतु यह अन्य की अपेक्षा महंगा होता है।

चॉकपट्ट प्रयोग संबंधी महत्त्वपूर्ण बातें (Important Points to be noted while using Chalk Board) : चॉकपट्ट का प्रयोग करने से संबंधित महत्त्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं :

(i) चॉकपट्ट की स्थिति कक्षा में ऐसी हो, जिससे सभी छात्र स्पष्ट रूप से उस पर अंकित की गई सामग्री को देख सकें।

(ii) चॉकपट्ट पर अक्षरों एवं अंकों को मोटा तथा सीधी रेखा में लिखना चाहिए।

(iii) चॉकपट्ट को झाड़न से ही साफ करना चाहिए तथा इसके प्रयोग करने का तरीका ऊपर से नीचे की तरफ ही होना चाहिए, ताकि चॉक पाऊडर नीचे ही गिरे, न कि उड़े।

(iv) चॉकपट्ट पर केवल मुख्य बातों को ही लिखना चाहिए।

(v) चॉकपट्ट पर प्रकाश की व्यवस्था ऐसी हो जिससे सभी छात्रों को स्पष्ट रूप से दिखे।

(vi) चॉकपट्ट पर सफेद चॉक के साथ-साथ रंगदार चॉक का प्रयोग भी करना चाहिए।

(vii) मुख्य बातें एवं अंतर को स्पष्ट करने के लिए रंगीन चॉक प्रयोग में लाए जाने चाहिए।

(viii) अध्यापक को चाहिए कि वह लिखते समय महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को उचित क्रम देकर विद्यार्थियों के समक्ष पेश करें।

(ix) अध्यापक को हमेशा चॉकपट्ट का प्रयोग बाएं से दाएं की ओर करना चाहिए एवं लिखित सामग्री को कार्य समाप्ति के बाद साफ कर देनी चाहिए।

(x) चॉकपट्ट पर लिखते समय अध्यापक को बीच-बीच में बोलते रहना चाहिए। लिखते समय अध्यापक को पीछे मुड़कर देखते रहना चाहिए ताकि कक्षा में अनुशासन बना रहे।

(xi) अध्यापक को चॉकपट्ट पर लिखते समय गति, सफाई एवं त्रुटियों को ध्यान में रखना चाहिए।

(xii) अध्यापक द्वारा चॉकपट्ट पर अंकित की गई सामग्री को संकेतक के प्रयोग द्वारा बताना चाहिए।

(xiii) शिक्षण को रोचक बनाने के लिए अध्यापक द्वारा बीच-बीच में विद्यार्थियों को चॉकपट्ट का प्रयोग करने हेतु आमंत्रित करना चाहिए।

(xiv) चॉकपट्ट का प्रयोग अध्यापक द्वारा निम्न बिंदुओं को दर्शाने के लिए किया जा सकता है—

- नए तथ्यों एवं नियमों को प्रस्तुत करने के लिए।
- अभ्यास के लिए।
- सार के लिए।
- रेखाचित्र द्वारा किसी तथ्य को समझाने के लिए।

3. फ्लैनल बोर्ड (Flannel Board)

ये लकड़ी का बोर्ड होता है जिस पर फ्लैनल का कपड़ा लगा होता है। ये हाथ से लिखे हुए, मुद्रित, ग्राफिक सामग्री को विद्यार्थियों के समक्ष पेश करने का प्रभावशाली साधन है। इसकी विशेषता यह है कि इस पर चित्रों एवं शब्दों को बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पहले से बने चित्रों एवं शब्दों को रेगमार पर चिपकाकर फ्लैनल बोर्ड पर लगाया जाता है तथा कार्य समाप्ति के बाद उन्हें हटा दिया जाता है।

फ्लैनल बोर्ड का निर्माण (Formation of Flannel Board) : ये प्लाईवुड या लकड़ी का एक पट्टा होता है, जिसे उचित आकार में काट लिया जाता है। फिर इस पर फ्लैनल नाम के एक कपड़े को कसकर लगा दिया जाता है। फ्लैनल के कपड़े पर ऊन के रेशे होने के कारण उसमें खुरदरापन होता है। प्रदर्शित किए जाने वाले चित्रों को रेगमार पर गोंद की सहायता से चिपकाया जाता है। रेगमार के टुकड़ों को फ्लैनल बोर्ड पर उचित जगह पर चिपकाकर कक्षा शिक्षण के उपयोग में लाया जाता है।

फ्लैनल बोर्ड के प्रयोग हेतु सावधानियां (Precautions while using Flannel Board) :

(i) अच्छे परिणाम हासिल करने हेतु अच्छे फ्लैनल का प्रयोग करना चाहिए।

(ii) प्रदर्शित करने वाली सामग्री का सावधानी से चुनाव करना चाहिए।

(iii) इस पर दिखाई जाने वाली सामग्री को क्रमवार रूप से रखना चाहिए ताकि दिखाते समय भूल न हो।

(iv) एक ही समय पर बहुत-सी सामग्री का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(v) पढ़ाने के पूर्व बोर्ड पर सामग्री के साथ अभ्यास कर लेना चाहिए।

(vi) फ्लैनल का रंग हल्का नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह जल्दी गंदा हो जाता है।

(vii) अगर संभव हो तो प्रयोग की जाने वाली सामग्री विद्यार्थियों द्वारा तैयार की जाए, ताकि उनमें रचनात्मकता का विकास किया जा सके।

उपयोगिता (Advantages) :

(i) फ्लैनल बोर्ड द्वारा शिक्षक, शिक्षण के समय की बचत कर सकता है।

(ii) ये कक्षा-कक्ष में विविधता एवं नवीनता लाता है।

(iii) इसका प्रयोग छोटी कक्षाओं में भाषा, गणित एवं विज्ञान सिखाने हेतु किया जा सकता है।

(iv) इसमें प्रयोग होने वाली सामग्री पहले से ही तैयार होती है, जिससे समय की बचत होती है।

(v) ये तथ्यों को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होता है।

(vi) ये विद्यार्थियों में सृजनात्मकता का विकास करता है।

(vii) ये विद्यार्थियों के सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण को विकसित करता है।

(viii) इस पर विचार तथा तथ्य आसानी से प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(ix) आर्थिक दृष्टि से यह कम खर्चीला होता है।

4. प्रतिमान या मॉडल (Models)

कई बार अध्यापक वास्तविक चीजों को कक्षा में न लाने की असमर्थता व समयाभाव के कारण वास्तविक वस्तुओं के प्रतिमानों की सहायता लेता है जैसे—किसी खेत का क्षेत्रफल, पिरामिड, शंकु, गोला, बेलन, वृत्त आदि की समस्याओं को हल करते समय इनके प्रतिमानों की आवश्यकता होती है। ज्यामिति के शिक्षण करते समय प्रतिमानों की विशेष आवश्यकता होती है। प्रतिमान या मॉडल बनाते समय अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह वास्तविक वस्तु के अनुरूप हो। इस प्रकार यदि अध्यापक आयताकार वर्गाकार वस्तुओं की समस्याओं को उनके मॉडल प्रस्तुत कर समझाएंगे तो विद्यार्थी इसे आसानी से समझ लेंगे। त्रि-आयामी वस्तुओं की समस्याओं को सुलझाने या हल करने में मॉडलों की बहुत आवश्यकता होती है। त्रि-आयामी समस्याओं को हल करने में मॉडलों की बहुत आवश्यकता होती है। त्रि-आयामी समस्याओं को केवल कल्पना से समझना असंभव होता है। यदि विद्यार्थियों को धन, शंकु, गोला, पिरामिड, प्रिज्म व बेलन इत्यादि के मॉडल दिखा दिए जाएं तो वे इनकी समस्याओं को शीघ्रता से समझकर हल कर सकते हैं।

मूल्यांकन की एक सतत एवं व्यापक प्रक्रिया के रूप में व्याख्या
(Evaluation as a Continuous and Comprehensive Process)

विद्यार्थियों की निस्पत्ति (performance) तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के परिणामों की जाँच हेतु काम में लाए जाने वाले परंपरागत संप्रत्ययों, परीक्षण, मापन तथा परीक्षाओं की तुलना में किसी भी शिक्षण अधिगम प्रणाली में मूल्यांकन की व्यापकता एवं निरंतरता को अधिक आँका जाता है। आइए इस बात को और अच्छी तरह समझा जाए।

मूल्यांकन की विस्तृतता या व्यापकता (Comprehensiveness of Evaluation)—पिछले पृष्ठों में मूल्यांकन के अर्थ प्रकृति और उसकी विशेषताओं के संबंध में हमने जो चर्चा की है उसको आधार बनाकर हम मूल्यांकन पद की विस्तृतता या व्यापकता के संबंध में निम्न बातें कह सकते हैं।

1. **तकनीक एवं साधनों के संदर्भ में मूल्यांकन की विस्तृतता या व्यापकता** (Comprehensiveness in terms of the employment of tools and techniques)—मूल्यांकन में परीक्षण, मापन तथा परीक्षा इन सभी की तुलना में मूल्यांकन हेतु जो भी तकनीक एवं साधन काम में लाए जाते हैं उनमें काफ़ी अधिक विस्तृतता और व्यापकता देखने को मिलती है। मूल्यांकन की जाँच प्रक्रिया में वस्तु या व्यवहारगत विशेषताओं की परिमाणात्मक व्यवस्था ही नहीं होती, बल्कि उनकी गुणात्मक व्याख्या भी की जा सकती है। अतः यहाँ मापन और परीक्षण में प्रयुक्त मापन विधियों और साधनों के अतिरिक्त गुणात्मक व्याख्या करने वाली विधियों और तकनीकों जैसे अवलोकन, प्रश्नावली, रेटिंग स्केल, साक्षात्कार आदि का प्रयोग भी मूल्यांकन तकनीक एवं साधनों के रूप में किया जा सकता है। इस तरह से मूल्यांकन में परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार की जाँच प्रक्रिया हेतु साधनों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, और इसी कारण तकनीकों एवं साधनों के प्रयोग की दृष्टि से मूल्यांकन को परीक्षण, मापन तथा परीक्षा आदि से अधिक व्यापक और विस्तृत ठहराया जा सकता है।

2. **परिणामों की दृष्टि से मूल्यांकन की व्यापकता** (Comprehensiveness in terms of output)—मूल्यांकन की प्रक्रिया के फलस्वरूप जो नतीजे सामने आते हैं और प्रदा (Output) के रूप में जो कुछ प्राप्त होता है वह परीक्षण मापन तथा परीक्षा की तुलना में काफ़ी ज़्यादा व्यापक और विस्तृत होता है। इसकी पुष्टि हेतु निम्न बातें कही जा सकती हैं—

(*i*) परिमाणात्मक विवरण जैसे गणित में रमेश के 100 में से 60 अंक हैं, प्रदान करने के अतिरिक्त मूल्यांकन के परिणाम यह भी बताते हैं कि वह प्रथम श्रेणी में पास हुआ है और उसकी उपलब्धि अच्छी तथा संतोषजनक है, आदि-आदि। इस तरह मापन संबंधी सूचना के आधार पर उसके वांछनीयता तथा उचितता के बारे में निर्णय लेने की बात मूल्यांकन को काफ़ी विस्तृतता तथा व्यापकता प्रदान करती है।

(*ii*) मूल्यांकन के परिणामों द्वारा विद्यार्थी के व्यवहार सभी पक्षों और व्यक्तित्व के सभी आयामों में आने वाले परिवर्तनों तथा होने वाले विकास की जाँच की जा सकती है जबकि मापन, परीक्षण तथा परीक्षाओं द्वारा की गई जाँच प्राय एकांगी तथा एकपक्षीय ही होती है।

(*iii*) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से जुड़े हुए सभी तत्त्वों, अवयवों तथा आधार स्तंभों के योगदान की जाँच मूल्यांकन में ही संभव हो पाती है। मूल्यांकन अपनी विस्तृतता एवं व्यापकता के कारण ही यह अच्छी तरह बताने में सफल हो पाता है कि :—

— निर्धारित शिक्षण-अधिगम उद्देश्य कितने उपयुक्त और सार्थक हैं ?

— अधिगम अनुभवों (Learning Experiences) का चयन अर्थात पाठ्यक्रम कितना उपयुक्त है।

— इन अधिगम अनुभवों को प्रदान करने की विधियाँ, तकनीक तथा शिक्षण अधिगम परिस्थितियाँ कहाँ तक उपयुक्त हैं।

— अधिगम अनुभवों को प्रदान करने में शिक्षक की भूमिका को कितना सार्थक कहा जा सकता है।

— अधिगम अनुभवों को ग्रहण करने में विद्यार्थी की भूमिका को कितना सार्थक बना जा सकता है।

— अधिगम अनुभवों के माध्यम से निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो पाई है आदि-आदि ?

3. **प्रयोजन एवं उद्देश्यों के संदर्भ में मूल्यांकन की व्यापकता** (Comprehensiveness in terms of purposes and objectives)—उद्देश्यों एवं प्रयोजन पूर्ति को लेकर भी मूल्यांकन परीक्षण, मापन तथा परीक्षा से बहुत अधिक व्यापक और विस्तृत दिखाई पड़ता है। मूल्यांकन के परिणाम शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से जुड़े हुए सभी व्यक्तियों को मार्ग दर्शन प्रदान करने का कार्य करते हुए दिखाई पड़ते हैं जैसे शिक्षक, शिक्षार्थी, प्रशासक वर्ग, विद्यार्थियों के माता-पिता, शिक्षा अनुसंधानकर्ता, शिक्षा नीतियों के निर्धारक, पाठ्यक्रम के निर्माणकर्ता, प्रश्न-पत्र निर्माणकर्ता तथा परामर्शदाता आदि सभी को मूल्यांकन के परिणामों की जरूरत पड़ती है। इसी तरह शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण उद्देश्य निर्धारण से लेकर उनकी पूर्ति हेतु की गई सभी प्रकार की प्रक्रियाओं के आयोजन तथा प्रबंध में मूल्यांकन के परिणामों द्वारा उचित पृष्ठ पोषण मिलने का प्रयोजन सिद्ध होता रहता है। इस तरह मूल्यांकन परिणाम अनुदेशन तथा शैक्षिक व्यवस्था एवं प्रणाली की अदा (Input), प्रक्रिया (Process) तथा प्रदा (Output) तत्त्वों को समुचित पृष्ठ पोषण (feedback) प्रदान करते हुए उनको इस तरह वांछित रूप से नियंत्रित रखने की व्यापक भूमिका निभाते हुए दिखाई दे सकते हैं जिससे संपूर्ण शिक्षण-अधिगम प्रणाली या व्यवस्था को उद्देश्य पूर्ति हेतु सही दिशा और दशा प्राप्त होती रहे।

मूल्यांकन की सततता या निरंतरता

(Continuity of Evaluation)

मूल्यांकन जहाँ अपनी व्यापकता और विस्तृतता के लिए जाना जाता है वहाँ उसकी एक दूसरी बड़ी विशेषता उसकी सततता या निरंतरता को लेकर होती है। उसमें इस विशेषता के विद्यमान होने की पुष्टि हेतु निम्न बातें कही जा सकती हैं—

1. मूल्यांकन कितने समय पश्चात किया जाए, इसके लिए कोई निश्चित अवधि नहीं होती जैसी कि परीक्षा (Examinations) और परीक्षण (Test) में देखने को मिलती है। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक अवधि में परीक्षा और परीक्षणों को लेने का रिवाज है। मूल्यांकन के लिए ऐसा कोई समय बंधन नहीं होता। शिक्षण अधिगम के संपूर्ण सत्र के दौरान जिस समय अध्यापक विद्यार्थियों की निष्पत्ति की जाँच करना चाहे, मूल्यांकन प्रक्रिया में उसे ऐसा सब कुछ करने की पूरी स्वतंत्रता रहती है।

2. विद्यार्थियों के व्यवहार में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जो परिवर्तन आते रहते हैं, अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वे कितने और किस रूप में उचित ठहराए जा सकते हैं, इस प्रकार का मूल्य आँकना मूल्यांकन का उद्देश्य होता है। व्यवहार में इन परिवर्तनों का आना अनवरत रूप से चलता ही रहता है। शिक्षण अधिगम के किस मुकाम पर किस प्रकार के अधिगम अनुभवों या शिक्षण अधिगम विधि और साधनों से किस प्रकार के परिवर्तन विद्यार्थियों के व्यवहार में आ जाएँ यह कहा नहीं जा सकता। इस दृष्टि से विद्यार्थियों के व्यवहार की जाँच और इन जाँच परिणामों का मूल्य निर्धारण भी अनवरत रूप से चलते रहना चाहिए। जैसे ही विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आए उसे उचित दिशा में आगे बढ़ते रहने के लिए अपेक्षित पुनर्बलन मिलना चाहिए और यह तभी हो सकता है जबकि

अध्यापक या स्वयं विद्यार्थी को यह पता चलता रहे कि वह ठीक दिशा में ठीक प्रकार अधिगम पथ पर आगे बढ़ रहा है। इस प्रकार की स्व-प्रतिपुष्टि चाहे अध्यापक को मिले या विद्यार्थी को, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की सफलता हेतु अत्यंत आवश्यक मानी जाती है और इसीलिए मूल्यांकन की प्रक्रिया को सतत या अनवरत रूप से निरंतर चलते रहना आवश्यक होता है और एक आदर्श मूल्यांकन में इस तरह की विशेषता अनिवार्य रूप में विद्यमान भी रहती है।

मूल्यांकन के प्रयोजन एवं कार्य
(Purposes and Functions of Evaluation)

मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों के द्वारा सामान्यतया निम्न प्रकार के प्रयोजन एवं कार्यों की पूर्ति होने की पूर्ण संभावना रहती है।

1. **अभिप्रेरणात्मक कार्य** (Motivational functions)—अध्ययन के दौरान अगर विद्यार्थियों को अपनी प्रगति और अधिगम परिणामों के बारे में पता चलता रहे तो इसमें उन्हें अधिगम पथ पर ठीक तरह आगे बढ़ते रहने हेतु वांछित अभिप्रेरणा प्राप्त होती रहती है। मूल्यांकन की प्रक्रिया एक सतत प्रक्रिया होती है। इसके परिणामों से बालकों की अपनी प्रगति और अधिगम पथ पर अपनी उचित दिशा और दशा का ज्ञान होता रहता है और यही बात उन्हें शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में पूरी तरह अभिप्रेरित बनाए रखने में भरसक मदद करती रहती है। इसके अतिरिक्त मूल्यांकन परिणामों को बहुधा अध्यापक तथा विद्यार्थियों को वांछित प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु भी काम में लाया जाता है जैसे डिवीजन, ग्रेड, सर्टीफिकेट, प्रशंसा-पत्र, मैडल इत्यादि प्रदान करने हेतु मूल्यांकन परिणामों को ही आधार बनाया जाता है। इस प्रकार के प्रोत्साहन उपायों का दो तरफ़ा लाभ होता है। एक तो जिन्हें इन्हें प्रदान किया जाता है उन्हें उचित अभिप्रेरणा प्राप्त होती है तथा इसके अतिरिक्त साथी विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को भी ऐसा ही कुछ कर दिखाने हेतु उचित अभिप्रेरणा प्राप्त होने की संभावना रहती है।

2. **सूचनात्मक या संप्रेषणात्मक कार्य** (Informational or Communication functions)—मूल्यांकन परिणामों को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की सफलता हेतु, वांछित संप्रेषण कायम रखने के लिए तथा सभी संबंधित व्यक्तियों को आवश्यक जानकारी प्रदान करने के काम में अच्छी तरह प्रयुक्त किया जा सकता है। मूल्यांकन द्वारा दिए गए ऐसे कुछ कार्य निम्न प्रकार के हो सकते हैं।

(*i*) मूल्यांकन के द्वारा विद्यार्थियों को अपनी अधिगम प्रगति के बारे में समय-समय पर वांछित सूचनाएँ प्राप्त होती रहती हैं। अपनी ताकत और कमज़ोरियों का ज्ञान उन्हें लगातार ऐसा पृष्ठ पोषण (feedback) देता रहता है जिससे वे अपने-आपको अधिगम पथ पर उचित ढंग से आगे बढ़ा सकें।

(*ii*) मूल्यांकन के परिणामों से अध्यापकों को भी अपने शिक्षण के बारे में उचित पृष्ठपोषण (feedback) प्राप्त होता रहता है। वे अपनी शिक्षण की प्रभावशीलता तथा विधियों और शिक्षण सामग्री की उपयुक्तता या कमियों से परिचित होते रहते हैं।

(*iii*) अंक, ग्रेड, सर्टीफिकेट, स्टार, प्रगति-पत्र तथा अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों की डायरी इत्यादि में दिए जाने वाले रिमार्क आदि मूल्यांकन परिणामों की ही देन होते हैं। इन सभी के द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से माता-पिता तथा अभिभावकों को अपने बालकों की प्रगति के बारे में लगातार वांछित सूचनाएँ प्राप्त होती रहती हैं और इन्हीं के आधार पर अपने बालकों

के कल्याण हेतु आगे उनका शिक्षकों तथा विद्यालय अधिकारियों से आवश्यक संप्रेषण और संपर्क बना रहता है।

(iv) मूल्यांकन के द्वारा शिक्षकों के अतिरिक्त विद्यालय के अन्य संबंधित व्यक्तियों को भी विद्यार्थियों के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त होती रहती है। पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला तथा विद्यालय कार्यालय के कर्मचारियों, खेल अधिकारी आदि सभी व्यक्तियों को ऐसी सभी जानकारी विद्यार्थियों की उनकी प्रगति तथा प्रशासनिक सेवाओं को व्यवस्थित करने में काफ़ी सहायता कर सकती है।

(v) मूल्यांकन परिणामों द्वारा विद्यालय के प्रशासनिक अधिकारियों तथा शिक्षा अधिकारियों को विद्यार्थियों तथा विद्यालय की प्रगति के बारे में अपेक्षित जानकारी मिलती रहती है। इस जानकारी के आधार पर ही वे विद्यालयों की कार्यप्रणाली पर उचित नियंत्रण रखने में कामयाब होते हैं।

(vi) मूल्यांकन के परिणामों के माध्यम से लोगों को विद्यालय विशेष की प्रगति तथा कार्यप्रणाली से परिचित होने का अवसर प्राप्त होता है। बोर्ड तथा प्रतियोगिता परीक्षाओं में विद्यालय के जो परिणाम आते हैं और पाठांतर क्रियाओं, समारोहों तथा प्रतियोगिताओं में जब भी किसी विद्यालय का नाम रोशन होता है उससे विद्यालयों की सापेक्षिक प्रगति से भलीभाँति परिचित हुआ जा सकता है।

(vii) मूल्यांकन के परिणामों से जो आँकड़े सामने आते हैं उन्हीं का सहारा लेकर अध्यापक तथा व्यक्ति विशेष पर विद्यार्थियों की सफलता तथा असफलता का श्रेय अथवा जवाबदेही लाद दी जाती है। इसी के आधार पर उन्हें अपनी कार्यप्रणाली में अपेक्षित सुधार लाने का अवसर मिलता है।

3. **नियोजन संबंधी कार्य** (Planning functions)—मूल्यांकन द्वारा चाहे उसका स्वरूप निदानात्मक हो या रचनात्मक और संकलनात्मक, इसके परिणाम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के नियोजन में निम्न प्रकार से सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

- शिक्षण-अधिगम के क्रियान्वयन हेतु उचित शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों का निर्माण मूल्यांकन परिणामों के संदर्भ में ही किया जाता है।
- उचित अधिगम अनुभवों का चयन तथा आयोजन एवं वांछित पाठ्यक्रम का विकास करने में मूल्यांकन परिणामों के आधार पर ही योजना बनाई जाती है।
- शिक्षण-अधिगम की विधियाँ एवं तकनीक तथा शिक्षण सहायक सामग्री आदि चयन संबंधी नियोजन में भी मूल्यांकन परिणामों की सहायता ली जाती है।
- उपचारात्मक शिक्षण, वैयक्तिक अनुदेशन तथा सामूहिक क्रियाओं तथा विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रम आदि के आयोजन का आधार भी मूल्यांकन परिणाम होते हैं।

4. **निर्णय लेने संबंधी कार्य** (Decision making functions)—मूल्यांकन परिणामों को ही आधार बनाकर बहुत से ऐसे शैक्षिक, प्रशासनिक तथा नीति निर्धारक निर्णय लिए जाते हैं जिनसे विद्यार्थियों तथा समाज का अधिक-से-अधिक भला किया जा सके और शिक्षा की प्रक्रिया तथा परिणामों में अधिक-से-अधिक सुधार लाया जा सके। ऐसे कुछ कार्य निम्न प्रकार के हो सकते हैं।

- मूल्यांकन परिणाम विभिन्न कोर्सों तथा अध्ययन क्षेत्रों में किन विद्यार्थियों का चयन किया जाए तथा किन का नहीं ऐसा निर्णय लेने में मदद करते हैं।

गणित में मूल्यांकन की आवश्यकता एवं उद्देश्य
(Needs and Objectives of Evaluation in Mathematics)

मूल्यांकन के जिन प्रयोजनों एवं कार्यों की हमने ऊपर चर्चा की है उन्हीं को आधार बनाकर गणित शिक्षण में मूल्यांकन की आवश्यकता और उद्देश्यों को निम्न प्रकार लिपिबद्ध किया जा सकता है।

1. किसी शिक्षण-अधिगम परिस्थिति में किसी कक्षा या स्तर विशेष के गणित शिक्षण हेतु अनुदेशनात्मक या शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण अथवा उनमें संशोधन करने में सहायता प्रदान करना।
2. किसी शिक्षण-अधिगम परिस्थिति तथा कक्षा या स्तर विशेष के गणित शिक्षण हेतु अधिगम अनुभवों के चयन और आयोजन में सहायता प्रदान करना।
3. किसी शिक्षण-अधिगम परिस्थिति तथा कक्षा या स्तर विशेष के गणित शिक्षण में गणित की विभिन्न शाखाओं तथा प्रकरणों के संदर्भ में वांछित शिक्षण विधियों, तकनीकों तथा शिक्षण साधनों के चयन और उपयोग में सहायता करना।
4. गणित में विद्यार्थियों की सामान्य तथा विशेष अधिगम कठिनाइयों के निदान तथा वांछित उपचारात्मक शिक्षण के आयोजन में सहायता करना।
5. गणित के अध्यापक को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं तथा उपलब्ध शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसके शिक्षण कार्य के उचित नियोजन एवं संगठन में मदद करना।
6. अध्यापक और विद्यार्थियों दोनों को ही अपने-अपने उत्तरदायित्वों को निभाने हेतु वांछित अभिप्रेरणा (आंतरिक तथा वाह्य) प्रदान करना।
7. निर्देशन एवं परामर्शदाताओं को जरूरतमंद विद्यार्थियों को शैक्षिक, व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श सेवाएँ प्रदान करने में सहायता करना।

मूल्यांकन के प्रकार
(Types of Evaluation)

गणित शिक्षण के दौरान गणित के एक अध्यापक को अपनी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की तीन अवस्थाओं—शिक्षण पूर्वावस्था, शिक्षणावस्था तथा शिक्षणोपरांत अवस्था में प्राय: तीन तरह के मूल्यांकन—निदानात्मक, रचनात्मक तथा संकलनात्मक की आवश्यकता पड़ती है। आइए अब इन तीनों प्रकार के मूल्यांकन की प्रकृति और विशेषताओं से परिचित हुआ जाए।

1. **निदानात्मक मूल्यांकन** (Diagnostic Evaluation)—इस प्रकार का मूल्यांकन विद्यार्थियों की योग्यताओं, रुचियों, अभिरुचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं से संबंधित ताकत और कमज़ोरी के निदान हेतु काम में लाया जाता है। शिक्षण से पूर्व जब एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों का निदानात्मक मूल्यांकन करता है तब वह यह जानने का प्रयत्न करता हुआ नज़र आता है कि विद्यार्थियों को जो पाठ या विषय-वस्तु पढ़ाई जाती है या प्रकरण विशेष का अधिगम कराया जाता है उसके संबंध में उनको पहले से कितना कुछ आता है अथवा उसके अध्ययन हेतु उनमें किस प्रकार की पूर्व योग्यताएँ विद्यमान हैं। इस प्रकार की निदानात्मक जानकारी का उपयोग वह अपने अनुदेशनात्मक कार्य की पूर्व योजना बनाने हेतु करता है और फलस्वरूप वह अपने शिक्षण को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, रुचियों तथा क्षमताओं के अनुकूल ढालने में सफलता अर्जित कर सकता है। इस प्रकार के मूल्यांकन हेतु जो विधियाँ तथा तकनीकें काम में लाई जाती हैं उनका स्वरूप औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही रूपों में हो सकता है। अनौपचारिक तकनीकों में पूर्व परीक्षण (pre-test), प्रश्नावली और साक्षात्कार की गिनती हो सकती है और औपचारिक तरीकों के उदाहरण के रूप में अवलोकन तथा आपसी संवाद या चर्चा का नाम लिया जा सकता है। परंतु निदानात्मक मूल्यांकन केवल शिक्षण की पूर्वावस्था यानी अनुदेशन से पहले ही किया जा सकता है यह बात नहीं है। जब किसी पाठ प्रकरण या इकाई का शिक्षण हो रहा हो तो उसके दौरान किसी भी समय अध्यापक अपने विद्यार्थियों के अवबोध, रुचि और उपलब्धि स्तर का पता लगाने हेतु इसका उपयोग कर सकता है। शिक्षण की क्रियात्मक अवस्था में किया गया इस प्रकार का निदानात्मक मूल्यांकन निर्माणात्मक या रचनात्मक मूल्यांकन (Formative evaluation) के बराबर ही आ खड़ा होता है और उसे ऐसे उपचारात्मक शिक्षण कार्यक्रम की प्रारंभिक अवस्था माना जा सकता है जिसके जरिए विद्यार्थियों की अधिगम कठिनाइयों तथा कमज़ोरियों का पता लगाने का प्रयत्न किया जाए। इस तरह अगर वास्तविक रूप में देखा जाए तो गणित शिक्षण में निदानात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की गहन अधिगम कठिनाइयों तथा कमज़ोरियों की प्रकृति और उनके पीछे हुए कारणों का निदान कर उपचारात्मक शिक्षण हेतु उचित कार्यक्रम का नियोजन करना होता है।

2. **निर्माणात्मक या रचनात्मक मूल्यांकन** (Formative evaluation)—इस प्रकार का मूल्यांकन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के क्रियान्वयन स्तर (Implementation stage) पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में इसकी ज़रूरत यह पता लगाने के लिए पड़ती है कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के परिणामस्वरूप

विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आ भी रहे हैं या नहीं। जो कुछ परिश्रम शिक्षक द्वारा शिक्षण कार्य हेतु किया जा रहा है या विद्यार्थी द्वारा अधिगम अर्जन में किया जाता है, वह सब कुछ ठीक दिशा और दशा को प्राप्त हो रहा है या नहीं। अगर मूल्यांकन के परिणाम कहीं कुछ भी कमी की ओर संकेत करते हैं तो शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को ही अपने शिक्षण तथा अधिगम विधियों, कार्यप्रणाली, शिक्षण अधिगम अनुभव, शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों तथा वातावरण आदि में अनुकूल परिवर्तन लाने के बारे में सोचना पड़ता है। इसी तरह अगर परिणाम संतोषजनक हों तो उसी तरह आगे बढ़ते रहने या उसमें कुछ बेहतर करने की प्रेरणा मिलती रहती है। इस तरह इस प्रकार के मूल्यांकन के परिणाम शिक्षक-अधिगम प्रक्रिया को सदैव ही एक नवीन रूप देने, नए तरह से उसका निर्माण करने आदि के रूप में फलीभूत होते रहते हैं। उद्देश्य केवल यही रहता है कि विद्यार्थियों के निर्माण या विकास के कार्य को सही दिशा और दशा प्राप्त होती रहे। इस प्रकार के मूल्यांकन में औपचारिक (जैसे चेकलिस्ट, प्रश्नोत्तर परीक्षण, अभ्यास कार्य, प्रदत्त कार्य) तथा अनौपचारिक (जैसे अवलोकन, विद्यार्थियों की टिप्पणियों, संवाद या पूछे जाने वाले प्रश्नों पर ध्यान देना) दोनों ही प्रकार की तकनीक या प्रविधियों का प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार मूल्यांकन की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप में निम्न प्रकार से लिपिबद्ध किया जा सकता है।

- पाठ के पढ़ाने या अनुदेशन प्रदान करने के दौरान यानी अनुदेशन की क्रियान्वयन अवस्था में (पूर्व या बाद में नहीं) ही इस प्रकार का मूल्यांकन किया जाता है।
- इससे विद्यार्थियों को अपनी प्रगति के बारे में जानकारी मिलती रहती है, मुख्यतया वह यह जानते हैं कि निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अभी उन्हें किस प्रकार के प्रयत्न करने हैं।
- इसकी सफलता का राज इसके सूचनात्मक (Informative) बने रहने में ही है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया ठीक तरह से आगे बढ़ रही है या नहीं यह जानकारी जितनी जल्दी-जल्दी और अच्छी प्रकार से इसके द्वारा मिलती रहे और अपेक्षित अभिप्रेरणात्मक तथा सुधारात्मक कदम उठाए जाते रहें यही इस प्रकार के मूल्यांकन का मुख्य प्रयोजन रहता है।
- परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार की सूचनाएँ तथा आँकड़े प्रदान करके यह अध्यापक को अपने अध्यापन में अपेक्षित सुधार लाने में सहायता करता है।
- विद्यार्थियों को उपयुक्त परामर्श देने, उनके लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करने और उन्हें अपनी प्रगति के लिए शिक्षकों से उपयुक्त सहायता लेने को प्रेरित करने में इसका विशेष योगदान रहता है।
- इस प्रकार के मूल्यांकन के परिणामों को विद्यार्थियों की उपलब्धियों के बारे में अच्छी या बुरी राय बनाने, फेल, पास करने, ग्रेडिंग करने, उनकी आपस में तुलना करने आदि में प्रयुक्त नहीं किया जाता और न किसी तरह उनका आलेखन स्थायी रूप से ऑफीसियल रिकार्ड में किया जाता है।

3. **संकलनात्मक मूल्यांकन** (Summative Evaluation)—इस प्रकार का मूल्यांकन कार्य पाठ या इकाई विशेष में शिक्षण/अनुदेशन के उपरांत किया जाता है। एक तरह से इसके द्वारा यह पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि पाठ के शिक्षण-अधिगम के द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में कैसे परिवर्तन आए, अधिगम की दृष्टि से उनको क्या कुछ उपलब्ध हुआ आदि। इस प्रकार के मूल्यांकन में भी औपचारिक (जैसे अध्यापक निर्मित तथा मानकीकृत परीक्षणों, प्रश्नावली, साक्षात्कार रेटिंग स्केल, अधिन्यास, प्रोजेक्ट कार्य आदि) और अनौपचारिक (जैसे अवलोकन, समूह चर्चा, विद्यार्थियों द्वारा

की गई टिप्पणी दिए गए उत्तर, दिए जाने वाले कार्य आदि) दोनों ही प्रकार की तकनीक एवं विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार के मूल्यांकन में सामान्य रूप से निम्न प्रकार की विशेषताएँ देखने को मिलती हैं।

— पाठ या अधिगम इकाई के शिक्षण अधिगम के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली अंतिम प्रगति का चित्र इस प्रकार के मूल्यांकन द्वारा ही प्राप्त होता है।

— निर्माणात्मक या रचनात्मक मूल्यांकन की तरह यह बार-बार नहीं किया जाता, इसे अंतिम रूप में पाठ या इकाई शिक्षण के उपरांत ही किया जाता है।

— इस प्रकार के मूल्यांकन परिणामों का विद्यार्थियों की पारस्परिक तुलना करने, फेल पास करने, मैरिट सूची बनाने, डिवीजन या ग्रेड देने, डिग्री और डिप्लोमा प्रदान करने तथा उनके चयन प्रमोशन आदि के बारे में निर्णय लेने आदि कार्यों में अच्छी तरह प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार के मूल्यांकन परिणामों को ही विद्यालय के स्थायी ऑफीसियल रिकार्ड में रखा जाता है और इसी से संबंधित सूचनाएँ प्रगति-पत्र (Progress report) में दर्ज की जाती हैं।

4 गणित में मूल्यांकन
[Evaluation in Mathematics]

मूल्यांकन
(Evaluation)

- **मूल्यांकन को परिभाषित कीजिए।**

अथवा

- **मूल्यांकन के अर्थ तथा अवधारणा का वर्णन कीजिए।** [CRSU, 2018]

अथवा

- **मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? इसे परिभाषित कीजिए।**

उत्तर : मूल्यांकन शैक्षिक-प्रक्रिया के प्रमुख अंगों में से एक है। शैक्षिक प्रक्रिया के तीनों अंगों का आपस में घनिष्ठ संबंध है। किसी एक की सम्पूर्ति शेष रहने पर शैक्षिक-प्रक्रिया सम्पूर्ण नहीं होती है। **मूल्यांकन** अर्थात् जो कुछ उद्देश्यों और प्रयोजनों के अनुरूप सिखाया गया है, बालक उसे किस सीमा तक ग्रहण कर पाए हैं।

मूल्यांकन का प्रत्यय (Concept of Evaluation)–आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में 'परीक्षा' और 'जाँच' के स्थान पर एक नवीन पारिभाषिक शब्द 'मूल्यांकन' का प्रयोग किया जाने लगा है। मूल्यांकन द्वारा शिक्षा के विस्तृत उद्देश्यों की प्राप्ति तथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण की जाँच का लक्ष्य बनाया जाता है। इस तरह मूल्यांकन प्रचलित परीक्षाओं की तुलना में बहुत अधिक व्यापक एवं उद्देश्यपूर्ण हैं।

मूल्यांकन की प्रक्रिया एक सतत् प्रयास है, जिसके द्वारा अध्यापक और विद्यार्थी दोनों परिश्रम तथा लाभ की मात्रा का मूल्य आंकते रहते हैं।

मूल्यांकन शैक्षिक प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है–जिस तरह एक चिकित्सक अपनी औषधि का मूल्यांकन रोगी के रोग घटने-बढ़ने से करता है, उसी प्रकार शिक्षक अपने अध्यापन का मूल्यांकन बालकों में होने वाले अपेक्षित व्यवहारगत-परिवर्तनों के माध्यम से करता है। बालक का सर्वांगीण विकास उस समय सम्भव है, जब वह सीखे हुए ज्ञान को व्यवहार में लाए।

मूल्यांकन बालकों में ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं मनोक्रियात्मक पक्ष के विकास का मापन करता है तथा उनकी उपयुक्तता की जाँच करता है। किसी भी विषय के शिक्षण के बाद यह जानना आवश्यक है कि छात्रों ने इसे कहाँ तक ग्रहण किया, उनके व्यवहार में क्या-क्या परिवर्तन हुए तथा ज्ञान में कितनी वृद्धि हुई। इस प्रकार छात्रों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का माप ही 'मूल्यांकन' कहलाता है। मूल्यांकन विभिन्न जांच व परीक्षाएँ आयोजित करके किया जाता है।

मूल्यांकन की परिभाषाएं
(Definitions of Evaluation)

शिक्षण और मूल्यांकन दोनों प्रक्रियाओं में परस्पर गहन संबंध है। मूल्यांकन शब्द का अर्थ मापन से भी कहीं अधिक व्यापक है, जिसमें गुणात्मक तत्त्वों को भी संख्यात्मक द्वारा बताया जाता है। मूल्यांकन के अंतर्गत परीक्षणों के सिद्धांत, उनकी रचना, मानकीकरण, प्रशासन एवं उनके माध्यम से प्राप्त परिणामों की व्याख्या

आदि को सम्मिलित किया जाता है। मूल्यांकन से तात्पर्य है, पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित उद्देश्यों और मूल्यों के लिए प्रयासरत विद्यार्थियों की प्रगति की जांच करना। शिक्षा के उद्देश्यों, शैक्षणिक अनुभवों एवं मूल्यांकन में बहुत नजदीकी संबंध है। शैक्षणिक अनुभवों की योजना उद्देश्यों के आधार पर तैयार की जाती है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हुई या नहीं, इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए मूल्यांकन किया जाता है। अनुभवों के किसी भी स्तर पर इस बात का मूल्यांकन किया जा सकता है कि किस सीमा तक अनुभवों के माध्यम से वांछित परिवर्तन हो रहा है।

संसार में प्रत्येक मनुष्य को मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार डॉक्टर अपनी औषधि का मूल्यांकन रोगी में रोग के बढ़ने या घटने से करता है, उसी प्रकार अध्यापक भी अपने शिक्षण का मूल्यांकन विद्यार्थियों में हुए व्यवहार परिवर्तन (Behavioural Change) के आधार पर करता है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी वस्तु, उपलब्धि, प्रक्रिया आदि का मूल्य अंकित करना मूल्यांकन कहलाता है। शिक्षा में मूल्यांकन अभी एक नई धारणा है। इसका प्रयोग स्कूल कार्यक्रम, पाठ्यक्रम, शैक्षिक सामग्री, शिक्षण एवं छात्रों की जांच के लिए किया जाता है। मूल्यांकन वह साधन है जो यह निश्चित करता है कि जितना कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाया गया है, उससे विद्यार्थियों ने कितना ग्रहण किया है तथा उनके व्यवहार में कितना परिवर्तन आया है।

कोठारी शिक्षा आयोग के अनुसार, "मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है। यह सम्पूर्ण है। यह संपूर्ण शिक्षा तंत्र का एक अटूट अंग है तथा शैक्षिक उद्देश्यों से इसका निकटतम संबंध है। यह अध्यापक की शिक्षण पद्धतियों को तथा विद्यार्थी की अध्ययन संबंधी आदतों को प्रभावित करता है और इससे न केवल शैक्षिक उपलब्धियों को जांचा जा सकता है वरन् उनमें सुधार भी किया जा सकता है।"

("Evaluation is a continuous process. It forms an integral part of the total system of education and is intimatly related to the total educational objectives. It exercises a great influence on the pupils study habits and the teachers methods of instruction and thus help not only to measure educational achievements but also to improve it.")

मोफ्त (Moffatt) के अनुसार, "मूल्यांकन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और यह विद्यार्थियों की औपचारिकता, शैक्षिक उपलब्धि की अपेक्षा अधिक है। यह व्यक्ति के विकास में अधिक रुचि रखता है। व्यक्ति के विकास को उसकी भावनाओं, विचारों तथा क्रियाओं से संबंधित वांछित व्यवहार परिवर्तनों के रूप में व्यक्त करता है।"

("Evaluation is a continuous process and is concerned with more than the form academic achievement of students. It is interested in the development of the individual terms of desirable behaviour changes in relation to his feelings, thinking and actions.")

क्विलिन व हनना (Quillen & Hanna) के अनुसार, "विद्यार्थियों के व्यवहार में विद्यालय द्वारा लाए गए परिवर्तनों के विषय में प्रमाणों के संकलन और उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।"

("Evaluation is the process of gathering and interpreting evidences on changes in the behaviour of the students as they progress through school.")

मूल्यांकन प्रक्रिया नामक त्रिकोण के तीन महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं—

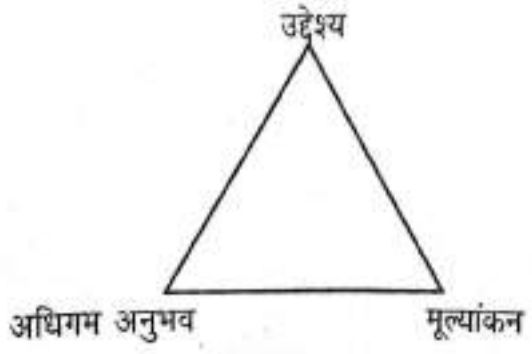

उद्देश्य, अधिगम अनुभव एवं मूल्यांकन। ये सभी तत्त्व एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। इसमें केवल मूल्यांकन की प्रक्रिया द्वारा ही यह निश्चित किया जाता है कि किस हद तक उद्देश्य की प्राप्ति हुई। कक्षा-कक्ष में प्रदान किए जाने वाले अधिगम अनुभवों की प्रभावशीलता तथा वह ढंग जिसके द्वारा शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है, की जांच मूल्यांकन द्वारा ही की जाती है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम ये निष्कर्ष निकाल सकते हैं–

1. मूल्यांकन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।
2. मूल्यांकन केवल विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों का मापन ही नहीं करता बल्कि उनकी उन्नति में भी सहायक सिद्ध होता है।
3. पाठ्यक्रम की कमियों को जानने में सहायता करता है एवं उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने में मदद करता है।
4. विद्यार्थियों के व्यवहार संबंधी होने वाले परिवर्तनों की जांच करता है।
5. एक निश्चित समय में शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति को जांचता है।
6. अनुदेशनात्मक उद्देश्य, शिक्षण प्रक्रिया एवं मूल्यांकन में आपसी संबंध है।
7. शिक्षकों, शिक्षण विधियों, पाठ्यपुस्तकों आदि की उपयुक्तता के बारे में जांच करता है।
8. मूल्यांकन वर्णनात्मक होने के साथ-साथ संख्यात्मक भी होता है।
9. मूल्यांकन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास का मार्गदर्शन करते हुए उनकी शक्तियों एवं कमियों की पहचान करना है।
10. मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से आवश्यक सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं एवं उनको निर्णय लेने में प्रयोग किया जाता है।

☛ अच्छे मूल्यांकन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर :

अच्छे मूल्यांकन की विशेषताएं

गणित में एक अच्छे मूल्यांकन की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

1. **विश्वसनीयता (Reliability) :** विश्वसनीयता का अर्थ है–स्थिरता एवं अंकन की शुद्धता (Reliability means consistency and accuracy of scores)। दूसरे शब्दों में विश्वसनीयता से अभिप्राय है कि यदि एक ही विद्यार्थी के ज्ञान का मूल्यांकन दो अलग-अलग अध्यापक करें तो उनके परिणाम में कोई अंतर न हो या एक ही परीक्षक यदि एक से अधिक बार मूल्यांकन करे तो भी विद्यार्थी की उपलब्धि वही रहे। ऐसा न हो कि एक अध्यापक यदि एक पेपर के आज 50 अंक देता है तो वह अध्यापक कुछ समय बाद उसी पेपर के 40 या 60 अंक दे। अतः अच्छे मूल्यांकन में विश्वसनीयता का गुण होना चाहिए।

2. **विषयानुकूलता (Validity) :** मूल्यांकन विषयानुकूल होना चाहिए। एक परीक्षा को तभी विषयानुकूल कहा जा सकता है यदि वह उस योग्यता का मापन करती है जिसके लिए वह तैयार की गई है। (A Test is called valid when it measures the ability for which it is constructed.) इस तरह से गणित के मूल्यांकन को विषयानुकूल भी कहेंगे जब उसके द्वारा विद्यार्थियों की गणित संबंधी योग्यता को ही मापा जाए न कि भाषा की योग्यता को।

3. **वस्तुनिष्ठता (Objectivity) :** मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता का गुण होना चाहिए। मूल्यांकन करते समय परीक्षक को अपनी रुचियों, भावनाओं तथा मानसिक अवस्था आदि का विद्यार्थियों की उपलब्धि में हस्तक्षेप न हो। मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता का होना बहुत आवश्यक है।

4. **व्यापकता (Comprehensiveness) :** मूल्यांकन में व्यापकता की विशेषता होनी चाहिए। व्यापकता से अभिप्राय है कि मूल्यांकन में पर्याप्त प्रश्नों की संख्या होनी चाहिए ताकि संबंधित योग्यता का

व्यापक रूप से मापन हो सके। ऐसा न हो कि कुछ पढ़ाए हुए प्रकरणों में से प्रश्न पूछ लिए जाएं और कुछ बिल्कुल छोड़ ही दिए जाएं। मूल्यांकन ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक पढ़ाए हुए प्रकरण को उचित स्थान मिले। मूल्यांकन में प्रश्नों की संख्या अधिक होनी चाहिए तथा प्रश्न इस प्रकार के हों कि वे पढ़ाए हुए ज्ञान के सभी क्षेत्रों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

5. **निदानात्मकता (Diagnosticity)** : एक अच्छे मूल्यांकन में निदानात्मकता का गुण होना चाहिए। इसके द्वारा विद्यार्थियों की त्रुटियों तथा कठिनाइयों का पता लगाना चाहिए ताकि उन्हें दूर किया जा सके तथा विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार सहायता की जा सके। इस तरह विद्यार्थी अपनी त्रुटियों एवं कठिनाइयों को दूर करके आगे बढ़ सकते हैं।

6. **व्यावहारिकता (Practicability)** : मूल्यांकन का व्यावहारिक होना निम्न बातों पर निर्भर करता है–

(i) **बनाने में सरलता (Easy in Construction)** : मूल्यांकन के लिए प्रयोग की जाने वाली परीक्षा तैयार करने में आसान होनी चाहिए। इसे तैयार करने में अधिक समय और परिश्रम नहीं लगना चाहिए।

(ii) **परीक्षा लेने में आसानी (Easy in Administration)** : मूल्यांकन करने के लिए परीक्षा लेते समय किसी कठिनाई का सामना न करना पड़े, जैसे–विद्यार्थी परीक्षा में नकल न कर सकें।

(iii) **नंबर लगाने में आसानी (Easy in Scoring)** : परीक्षक को परीक्षा के नंबर लगाने में आसानी होनी चाहिए। अध्यापक को न्यायपूर्ण नंबर लगाने में सुगमता हो।

7. **मूल्यांकन रोचक होना चाहिए (Evaluation should be Interesting)** : मूल्यांकन अथवा परीक्षा में रोचकता होनी चाहिए। रोचक मूल्यांकन से विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। प्रश्नों का क्रम सुव्यवस्थित होना चाहिए।

☛ **मूल्यांकन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।** [MDU, 2018]

उत्तर :

मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान
(Steps of Evaluation Process)

मूल्यांकन प्रक्रिया एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है जो निम्न प्रकार है :

मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपानों को एक निश्चित क्रम में निम्न प्रकार लिखा जाता है–

1. **शैक्षणिक प्राप्य उद्देश्यों का चुनाव (Selection of the Educational Objectives)** : सबसे पहला सोपान है कि उन प्राप्य उद्देश्यों को चुनना है, जिनका मूल्यांकन करना हो अथवा विषय-वस्तु से संबंधित उन उद्देश्यों का चुनाव करना है, जिनका मूल्यांकन करना हो।

2. **प्राप्य उद्देश्यों की व्याख्या (Defining the Objectives)** : इस सोपान में चयनित प्राप्य उद्देश्य की स्पष्ट व्याख्या करनी होती है। यह व्याख्या विशेष रूप से विद्यार्थी में व्यवहार परिवर्तन के रूप में की जा सकती है अथवा प्राप्य उद्देश्य के लिए छात्र कैसा और क्या व्यवहार करता है, उनको लिखा जाता है। व्यवहार के लिए स्थिति (Situation) विषय से ही ली जानी चाहिए।

3. **स्थिति की पहचान (Identifying the Situation)** : प्राप्य उद्देश्यों से संबंधित व्यवहार परिवर्तन किस हद तक हुआ है, इसका अनुमान उपयुक्त स्थिति पर निर्भर करता है। विद्यार्थी के सामने एक निश्चित स्थिति रखने पर उसके व्यवहार का ज्ञान संभव होता है।

4. **परीक्षणों की जांच एवं चुनाव (Examine and Choosing the Tests)** : ऐसे परीक्षणों एवं तकनीकों का चुनाव जो चुने हुए व्यवहार का ज्ञान प्रत्यक्ष (Direct) एवं अप्रत्यक्ष रूप में दे। यदि उपलब्ध परीक्षण उपयोगी सिद्ध न हो तो नई विधियों तथा युक्तियों का निर्माण अनिवार्य बन जाता है।

5. **मूल्यांकन की युक्तियों का निर्माण (Construction of the Evaluation Devices)** : मूल्यांकन की युक्ति तैयार करते समय अध्यापक को निम्न बिंदुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए–

– कौन-सी युक्ति द्वारा पढ़ाने से उद्देश्यों का मूल्यांकन संभव हो सकता है।

– क्या उपयुक्त युक्ति प्रयोग करने पर कोई कठिनाई तो नहीं आती?

– इस युक्ति द्वारा वास्तविक रूप में साक्ष्य (Evidence) प्राप्त होते हैं अथवा नहीं।

– दो अलग-अलग विद्यार्थी एक ही युक्ति को समान स्थिति में प्रयोग करें तो समान परिणाम प्राप्त होते हैं।

6. **युक्ति का प्रयोग एवं ब्यौरा (Application and Record of the Device)** : किसी भी युक्ति का प्रयोग करने में विद्यार्थी के व्यवहार का ब्यौरा रखा जाता है। अध्यापक को किसी भी युक्ति द्वारा विद्यार्थी को अलग-अलग स्थितियों में रखकर निरीक्षण करना चाहिए एवं उसके व्यवहार का ब्यौरा बनाना चाहिए।

7. **प्राप्य परिणामों की व्याख्या (Interpretation of the Result)** : परिणामों का विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण के आधार पर विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन का पता चलता है। इसकी जानकारी प्राप्य उद्देश्यों को सामने रखकर ही संभव है।

मूल्यांकन की आवश्यकता (Need of Evaluation)

शिक्षक द्वारा कक्षा में शिक्षण करना तथा उसकी उपलब्धि या संप्राप्ति का ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षण के लिए आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि इनकी प्रभावशीलता में कमी रहने के कारणों को भी ज्ञात किया जाए और इन कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाए। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की प्रगति एवं सीमा के ज्ञान के लिए मूल्यांकन आवश्यक है। मूल्यांकन के अभाव में समस्त क्रियाकलाप मूल्यहीन बन जाते हैं। मूल्यांकन से ही हमारी सफलताओं एवं असफलताओं का निर्णय किया जाता है। इसी से कठिनाइयों के निरीक्षण में मदद मिलती है। मूल्यांकन के द्वारा ही बालक की भावी जीवन-यात्रा का पथ-प्रदर्शन किया जाता है।

मूल्यांकन में ध्यान देने वाली मुख्य चार बातें आवश्यक हैं :

(i) मूल्यांकन नियमित होना चाहिए।
(ii) मूल्यांकन कार्य नैदानिक एवं उपचारात्मक हो।
(iii) मूल्यांकन अधिगम स्तरोन्नयन करने वाला हो।
(iv) शिक्षण में विभिन्न विधियों को प्रोत्साहित करने वाला हो।

मूल्यांकन करने की निम्न आवश्यकताएं हैं–

1. मूल्यांकन द्वारा यह पता चलता है कि शिक्षा के उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हो चुके हैं।
2. मूल्यांकन द्वारा हम यह भी पता लगाते हैं कि विभिन्न विषयों में जो प्रयोजन हमारे सम्मुख आए, उनको हमने किस सीमा तक प्राप्त किया।
3. मूल्यांकन द्वारा इस बात की भी पुष्टि होती है कि कक्षा-शिक्षण में जो अनुभव प्रदान किए गए, वे कितने प्रभावशाली हैं।

निदानात्मक परीक्षण तथा उपचारात्मक शिक्षण
(Diagnostic Testing and Remedial Teaching)

निदानात्मक परीक्षण क्या है?

अथवा

निदानात्मक परीक्षण पर टिप्पणी लिखो।

उत्तर :

निदानात्मक परीक्षण का अर्थ
(Meaning of Diagnostic Testing)

"निदान" (Diagnosis) शब्द का प्रयोग चिकित्सा विज्ञान में किया जाता है। लक्षण को देखकर रोग की पहचान करना और रोग के कारणों का पता लगाना "निदान" कहलाता है। रोग का निदान डॉक्टर करते हैं और छात्रों के रोग या दोष का पता अध्यापक रूपी डॉक्टर करते हैं। दोषों की पूरी जाँच करने के उपरांत अध्यापक उसी के निदान के लिए निदानात्मक शिक्षण का प्रयोग करता है। इस प्रकार शिक्षा-क्षेत्र में निदान का अर्थ उस प्रक्रिया से है, जिससे हम शिक्षा संबंधी समस्याओं के मूल कारणों की खोज एवं निवारण का निर्णय करते हैं। दूसरे शब्दों में शैक्षणिक निदान वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा शिक्षा क्षेत्र में बालकों की कठिनाइयों में सुधार हेतु ज्ञान प्राप्त किया जाता है। बालकों की कठिनाइयों की जानकारी के लिए शिक्षा-शास्त्रियों ने अनेक निदानात्मक परीक्षणों की खोज भी कर ली है।

गणित में विद्यार्थियों की कमजोरियों एवं कठिनाइयों का निदान करने हेतु जो परीक्षण किए जाते हैं उन्हें निदानात्मक परीक्षण कहते हैं। विद्यार्थी की गणित में कमजोरी एवं पिछड़ेपन को दूर करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह किन परिस्थितियों में गलतियाँ करता है, गलती करने का कारण क्या है, तथा गलतियाँ किस प्रकार की हैं इत्यादि। विद्यार्थियों की इन गलतियों को सुधारने के लिए जो परीक्षण किए जाते हैं, उन्हें निदानात्मक परीक्षण कहते हैं। **मस्सेल** के अनुसार—"निदानात्मक शिक्षण में विद्यार्थियों की विशेष गलतियों एवं त्रुटियों का निदान करने का विशेष प्रयास किया जाता है।"

विद्यालय में विद्यार्थी भिन्न-भिन्न विषयों का अध्ययन करते हैं तथा अध्यापक विषयों को पढ़ाते हैं। अध्यापक के सामने एक ही प्रमुख उद्देश्य होता है कि उसके विषय में विद्यार्थी शत-प्रतिशत पास होकर उच्च कोटि की उपलब्धियाँ हासिल करें। विद्यार्थियों के सामने भी यही लक्ष्य होता है कि वह उस विषय का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करके कक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करें। परंतु सफलता से अधिक महत्त्वपूर्ण बात ये है कि विद्यार्थी शुरू से ही विषय के शिक्षण बिंदुओं को भली-भाँति समझें तथा अध्यापक विषय पढ़ाते समय अपना ध्यान उन बिंदुओं पर केंद्रित करें। कभी-कभी विद्यार्थी उन शिक्षण बिंदुओं का पूरी तरह ज्ञान प्राप्त न करते हुए भी कक्षा को पास कर जाता है। परंतु प्रश्न केवल पास होने का नहीं है बल्कि पूरी जानकारी का है तथा उनको भिन्न-भिन्न श्रेणियों जैसे—पहली, दूसरी तथा तीसरी में रखा जाता है परंतु निदानात्मक परीक्षण से हम इस बात का पता लगा सकते हैं कि विद्यार्थी विषय के किन-किन बिंदुओं को नहीं समझ पाए। बुखार की अवस्था में जब हम डॉक्टर के पास जाते हैं तो वह दवाई देने से पहले बुखार के प्रकार की जाँच करता है कि ये मलेरिया है या टाईफाईड। इस पद्धति को "निदान" (Diagnosis) की संज्ञा दी जाती है। निदान के उपरांत ही बीमारी का उपचार किया जाता है जिससे बुखार का निवारण हो जाता है। चिकित्सा विज्ञान से ही निदान शब्द को शिक्षा के क्षेत्र में लाया गया है।

निदान का कार्य प्रारंभ से ही होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते। इसलिए एक प्रकार का ही उपचार सभी विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त नहीं है। अध्यापक को विषय शिक्षण प्रारंभ करने से पूर्व विद्यार्थियों की सही स्थिति निदान द्वारा मालूम कर लेनी चाहिए। निदानात्मक कार्य प्रत्येक प्रकरण के पश्चात् करना चाहिए, जिससे उसका उपचार या निदान उसी समय किया जा सके। यदि विद्यार्थी की कमी

...मय रहते दूर न की जाए तो वह कमी बढ़ जाती है और विद्यार्थी का विषय ज्ञान कम होता जाता है। जैसे ...कमी का एहसास हो, उसी समय उसका उपचार किया जाना चाहिए, ताकि वो कमी आगे ना आ सके।

आज के वैज्ञानिक युग में विद्यार्थियों की गलतियों का पता लगाने हेतु वैज्ञानिक विधियों को प्रयोग में ...या जाता है। अध्यापक जो भी परीक्षण कक्षा-कक्ष में करता है, वह निदानात्मक परीक्षण ही होता है। इन ...रीक्षणों से ये ज्ञात हो जाता है कि कमजोरी कहाँ है? निदानात्मक परीक्षण की सहायता से अध्यापक प्रत्येक ...द्यार्थी को उनकी कमजोरियों एवं योग्यताओं के अनुसार एक क्रमबद्ध रूप से विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत कर ...कता है। अब प्रश्न ये सामने आता है कि गणित में निदान कार्य के लिए किन भिन्न-भिन्न सोपानों को ध्यान ...रखा जाना चाहिए।

गणित में निदानात्मक परीक्षण हेतु सोपानों का वर्णन करो।

उत्तर :

गणित में निदानात्मक परीक्षण हेतु सोपान (Steps of Diagnostic Testing in Mathematics)

(i) विद्यार्थियों का गणित में किन भिन्न-भिन्न पदों (Terms), प्रत्ययों (Concepts), तथ्यों (Facts), तथा चिह्नों (Symbols) आदि जिनका उनको सही ज्ञान न हुआ हो, उसका पता लगाना।

(ii) प्रत्येक पद, प्रत्यय, तथ्य चिह्न इत्यादि कक्षा के कितने विद्यार्थियों को स्पष्ट नहीं हैं, इसमें विद्यार्थियों का प्रतिशत ज्ञात करके उच्च प्रतिशत से निम्न प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है। इसका कारण ये है कि यदि गणित के किसी तथ्य को अधिकतर विद्यार्थी नहीं समझ पाए हैं तो उसका उच्च प्रतिशत आएगा एवं उसी का सर्वप्रथम उपचार किया जाना चाहिए। इसके पश्चात् कम प्रतिशत वाले तथ्य का उपचार किया जाए। ये प्रक्रिया इसी प्रकार चलती रहेगी जब तक सभी तथ्यों (Facts) का विद्यार्थियों को सही ज्ञान ना हो जाए।

(iii) जो भी प्रत्यय एवं तथ्य विद्यार्थियों को स्पष्ट नहीं हुए, उनके स्पष्ट न होने के कारणों को पहचानना चाहिए। सही कारण का ज्ञान होने के पश्चात् उसके निवारण का सही उपचार संभव हो सकता है।

गणित संबंधी पद, प्रत्यय, तथ्य आदि स्पष्ट न होने के कारण (Causes of Why Terms, Facts, Concepts etc. of Mathematics are not clear)

विद्यार्थियों को गणित संबंधी पद, प्रत्यय, तथ्य आदि के स्पष्ट न होने के भिन्न-भिन्न कारण निम्न हैं :

(i) यदि विद्यार्थी को पिछली कक्षा में गणित के पद, प्रत्यय, तथ्य आदि अच्छी तरह स्पष्ट नहीं हुए हों तो नवीन ज्ञान प्राप्त करने में रुकावट पैदा होती है, क्योंकि नया ज्ञान पूर्व ज्ञान पर आधारित होता है। इसलिए नया ज्ञान देने से पहले विद्यार्थियों की कमियों को जानकर उनका निवारण किया जाना अति आवश्यक बन जाता है। इन कमियों का ज्ञान निदानात्मक परीक्षण द्वारा ही संभव है।

(ii) अध्यापक को कक्षा में शिक्षण कार्य करने से पहले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए क्योंकि विद्यार्थियों की सफलता उनकी आवश्यकताओं पर निर्भर करती है।

(iii) यह भी देख लेना चाहिए कि विद्यार्थियों को गणित विषय के अध्ययन में रुचि है या नहीं। रुचि न होने की अवस्था में वह गणित की परीक्षा में असफल रहते हैं।

(iv) गणित के उचित पाठ्यक्रम के अभाव में भी विद्यार्थियों को विषय ज्ञान स्पष्ट नहीं हो पाता है।

(v) इसके अतिरिक्त विद्यालय में गणित विषय की पुस्तकें एवं सहायक सामग्री का न उपलब्ध होना भी विद्यार्थियों में अरुचि का कारण बनता है।

(vi) विद्यार्थियों को गणित के प्रत्यय स्पष्ट नहीं हो पाते हैं यदि उनकी योग्यता सामान्य से कम होती है तो इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए।

(vii) यदि गणित का अध्यापक शिक्षण में नई विधियों का प्रयोग नहीं करता है तो उस स्थिति में औसतन तथा औसतन से नीचे के विद्यार्थियों को पढ़ने या सीखने में कठिनाई आती है।

☛ निदानात्मक परीक्षण के उद्देश्य, आवश्यकता व महत्त्व पर प्रकाश डालो।

उत्तर :

निदानात्मक परीक्षण के उद्देश्य
(Objectives of Diagnostic Test)

(i) गणित विषय में कमजोर व पिछड़े विद्यार्थियों की पहचान करना।
(ii) गणित पाठ्यक्रम में बदलाव लाना व इसे बालकेन्द्रित बनाना।
(iii) विद्यार्थियों की कमजोरियों, गलतियों व विशेषताओं की पहचान करना।
(iv) गणित की अध्ययन-अध्यापन प्रणाली के दोषों को दूर करना।
(v) गणित की अधिगम-प्रक्रिया व अधिगम अनुभव में बाधक तत्त्वों को पहचानकर उनका उपचार करना।
(vi) अध्ययन पद्धतियों का दिशा-निर्देशन करना।
(vii) विद्यार्थियों के विषय संबंधी विकास में रूकावट आने वाले तत्वों को जानना तथा उपचारात्मक सुझाव देना।

गणित शिक्षण में निदानात्मक परीक्षणों की आवश्यकता व महत्त्व
(Need and Importance of Diagnostic Test in Mathematics Teaching)

गणित शिक्षण में निदानात्मक परीक्षणों के महत्त्व व आवश्यकताओं को निम्नलिखित कारणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

(i) निदानात्मक परीक्षणों द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि विद्यार्थी कौन-सी मानसिक प्रक्रियाओं को सम्पादित नहीं कर सकता।
(ii) इसकी आवश्यकता केवल कमजोर व कम प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को ही नहीं वरन् सामान्य विद्यार्थियों को भी होती है।
(iii) इस परीक्षण का प्रयोग विभिन्न कठिनाइयां उत्पन्न करने वाले प्रश्नों का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है।
(iv) इस परीक्षण की सहायता से यह ज्ञात किया जा सकता है कि विद्यार्थियों की विषयगत एवं विशेष इकाई में कठिनाई स्तर क्या है?
(v) निदानात्मक परीक्षण द्वारा अध्यापकों की पठन-पाठन की स्थितियों को प्रभावशाली एवं मजबूत बनाया जा सकता है।
(vi) इससे विद्यार्थियों के स्कूल में अध्ययन करते समय आने वाली रुकावट के कारणों का पता लगाया जा सकता है। इससे यह पता चलता है कि विद्यार्थी ने जिन उद्देश्यों से स्कूल में प्रवेश लिया था वे उसे प्राप्त हुए हैं या नहीं?
(vii) इससे विद्यार्थियों की वास्तविक व वांछनीय उपलब्धियों में व्याप्त दूरी को समाप्त किया जा सकता है।
(viii) यह परीक्षण अध्यापकों के उचित निर्देशन, परामर्श व शिक्षण के लिए आवश्यक है।
(ix) यह परीक्षण विद्यार्थियों की विभिन्न कमियों को दूर करने के लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करने में सहायक है।
(x) इस प्रक्रिया का प्रयोग विषय-वस्तु के विश्लेषण के अतिरिक्त मानसिक प्रक्रिया के विश्लेषण हेतु भी प्रयोग किया जाता है।

उपचारात्मक शिक्षण से आप क्या समझते हैं? उपचारात्मक शिक्षण का महत्त्व तथा उद्देश्य बताइये।

अथवा

उपचारात्मक शिक्षण पर टिप्पणी लिखो।

उत्तर :

उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching)

उपचारात्मक शिक्षण एक ऐसा कार्य है, जो विद्यार्थियों की सामान्य या विशिष्ट अधिगम कमजोरियों को हल करने के लिए किया जाता है। जिन कमजोरियों एवं कठिनाइयों का निदान किसी निदानात्मक प्रक्रिया या परीक्षण से किया गया हो। अतः किसी विशेष विद्यार्थी की किसी विशेष विषय या प्रकरण में अनुभव होने वाली कठिनाई एवं कमजोरी के निदान से उनके निवारण के लिए किसी उपचारात्मक शिक्षण योजना का काम शुरू होता है। किसी समस्या विशेष के अनुसार ही उसका प्रारंभ किया जाता है। इन्हीं धारणाओं व मान्यताओं के आधार पर ही गणित के उपचारात्मक शिक्षण उपायों के बारे में निम्नलिखित तथ्य उभरकर सामने आते हैं :

(i) यदि किसी कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी इन कठिनाइयों व कमजोरियों से गुजर रहा है तो उन कठिनाइयों व कमजोरियों के निवारण के लिए एक सामूहिक कार्यक्रम चलाया जाएगा। इसके लिए विद्यार्थी जिस विषय से संबंधित समस्याएँ अनुभव कर रहे हैं, उस विषय की अतिरिक्त कक्षाएँ लगाई जाएंगी। कहने का अर्थ है कि उस विषय पर अतिरिक्त ध्यान दिया जाएगा। उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए सभी उचित विधियों जैसे—श्रव्य-दृश्य साधन, लिखित कार्य, अभ्यास कार्य, प्रयोगात्मक कार्य इत्यादि की सहायता ली जा सकती है।

(ii) विभिन्न समस्याओं के उपचारात्मक उपाय भी समस्या के अनुरूप ही विशेष व वैयक्तिक होंगे। गणित विषय एक क्रमिक विषय है, जिसमें प्रत्येक विधि क्रम अनुसार चलती हैं। प्रत्येक विधि या प्रकरण अपने से पहले पढ़ाई गई विधि पर आधारित होती है और आगे पढ़ाई जाने वाली विधि का आधार बनती है। अतः किसी विद्यार्थी की समस्या के उपचार हेतु उसे उस समस्या का बुनियादी आधार दिया जाना चाहिए।

(iii) कई बार विद्यार्थी विषय में पर्याप्त रुचि न होने के कारण उसे उचित ढंग से समझ नहीं सकता। इसलिए अध्यापक द्वारा विद्यार्थी को गणित में ऐसी भूमिका प्रदान की जाए जिससे वह गणित के महत्त्व को समझते हुए उसमें पर्याप्त रुचि लेने लगे। कई बार निदान की गई समस्या उसके पूर्व ज्ञान से संबंधित नहीं होती। तब उस समस्या का निदान अवश्य ही भविष्य के शिक्षण-अधिगम कार्यक्रम में होगा। विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली गलतियों व निदानात्मक परीक्षण परिणाम का विश्लेषण करने से ही उसकी विषय संबंधित कठिनाइयों एवं कमजोरियों का पता चलेगा। इसलिए निदान के आधार पर ही हम उसके उपचारात्मक शिक्षण का आयोजन कर सकते हैं।

विद्यार्थियों द्वारा दिए गए निदानात्मक परीक्षण के प्रश्नों के उत्तरों की सहायता से निदानात्मक अधिगम कठिनाइयों तथा गलतियों के विश्लेषण के आधार पर वैयक्तिक उपचारात्मक नियोजन किया जाता है।

उपचारात्मक शिक्षण का महत्त्व (Importance of Remedial Teaching)

उपचारात्मक शिक्षण का उद्देश्य है छात्रों की त्रुटियों का निवारण। त्रुटियाँ किन कारणों से हो रही हैं सर्वप्रथम विवेक द्वारा पता लगाना चाहिए। अगर छात्र गुणा एवं भाग में "हासिल" की भूल करता है तो कारण क्या है? इसे स्पष्ट करने के बाद ही निवारण संभव है। ऐसे समय छात्रों के साथ प्रेम एवं सहानुभूति का भाव रखना चाहिए। उन्हें प्रेरित एवं प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। प्रोत्साहन से छात्रों में प्रेरणा आती है और बल

मिलता है, जिससे वे अपेक्षित सुधार करते हैं। उपचारात्मक शिक्षण से छात्रों की कठिनाइयों को दूर किया जाता है एवं उनके द्वारा प्रगति प्रारंभ हो जाती है। उपचारात्मक शिक्षण छात्रों को हीन भावना से बचाता है। वह उन्हें कुसामंजस्यता की हीन भावना से मुक्त कर देता है। जब तक हीन भावना बनी रहेगी, छात्र प्रगति नहीं कर सकते। इसलिए उपचारात्मक शिक्षण में इस भावना को समाप्त किया जा सकता है। कभी-कभी देखा जाता है कि बुरी संगति के कारण भी छात्र अध्ययन में मन नहीं लगाते और पिछड़ने लगते हैं। ऐसी स्थिति में अध्यापक को बुरी संगति से मुक्ति दिलाने के लिए उपचारात्मक शिक्षण का सहारा लेना चाहिए और छात्रों को आदर्श पुरुषों के उदाहरण से एवं अच्छे छात्रों के सहयोग से लाभान्वित करना चाहिए, इससे बालकों का अपेक्षित विकास होता है।

उपचारात्मक शिक्षण के उद्देश्य
(Objectives of Remedial Teaching)

"उपचार" का अर्थ है "ईलाज"। जिस प्रकार डॉक्टर रोगी का ईलाज करता है, उसी तरह गणित शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा गणित में प्रयोग होने वाले भिन्न-भिन्न पदों (Terms), प्रत्ययों (Concepts), चिह्नों (Symbols), एवं तथ्यों (Facts) संबंधी अशुद्धियों का उपचार करके उन्हें सही ढंग से प्रयोग करने के योग्य बनाता है। गणित शिक्षण में उपचारात्मक शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

(i) छात्रों की दूषित मनोवृत्तियों एवं आदतों को समाप्त करना।
(ii) छात्रों में गणित शिक्षण के प्रति रुचि पैदा करना।
(iii) छात्रों में प्रगतिशील आदतों का विकास करना।
(iv) छात्रों के चरित्र एवं मनोबल को विकसित करना।
(v) छात्रों के समक्ष सीखते समय आने वाली कठिनाइयों को दूर करना।
(vi) छात्रों में आत्म-विश्वास पैदा करना।
(vii) छात्रों की मानसिक उलझनों को सुलझाना।
(viii) छात्रों में सच्चे ज्ञान की पूर्ति करना।

☛ **उपचारात्मक शिक्षण की विधियों का वर्णन करो।**

अथवा

☛ **उपचारात्मक शिक्षण की विधियों की उपयुक्त उदाहरणों द्वारा व्याख्या कीजिए।**

उत्तर :

उपचारात्मक शिक्षण की विधियाँ
(Methods of Remedial Teaching)

गणित में उपचारात्मक शिक्षण की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। इन विधियों को हम सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं :

1. सामूहिक विधि (Group Method)
2. व्यक्तिगत विधि (Individual Method)

इनका विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नलिखित है :

1. सामूहिक विधि (Group Method) : सामूहिक उपचार विधि से तात्पर्य है—सभी छात्रों का एक साथ उपचार करना। गणित में कुछ अशुद्धियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें अधिकतर छात्र करते हैं। अध्यापक छात्रों की कॉपियाँ देखकर या उनसे प्रश्न पूछकर ऐसी गलतियों को ढूँढ़ निकालता है। ये अशुद्धियाँ पिछली कक्षा के गलत शिक्षण के कारण या भ्रमपूर्ण धारणाएँ बन जाने के कारण या परिवेश के कारण पैदा हो सकती हैं। इन गलतियों का सामूहिक उपचार करने से सभी छात्रों को लाभ पहुँच सकता है एवं समय की भी बचत हो सकती है। अध्यापक को सामूहिक उपचार के लिए छात्रों द्वारा की गई सामान्य अशुद्धियों को अलग कर लेना

चाहिए और फिर चॉक बोर्ड के माध्यम से उन अशुद्धियों को सुधारना चाहिए। निरन्तर अभ्यास से ही अशुद्धियाँ को जो कि आदत बन चुकी हैं, दूर किया जा सकता है।

सामूहिक उपचार की एक दूसरी विधि भी है। इस विधि में समूची कक्षा की अशुद्धियों का एक साथ उपचार नहीं किया जाता है, बल्कि अशुद्धियों के आधार पर कक्षा को चार भागों में बाँट लिया जाता है और फिर प्रत्येक वर्ग की विशिष्ट अशुद्धियों का सामूहिक उपचार किया जाता है। कक्षा में कुछ छात्र ऐसे होंगे जिन्हें ज्यामिति समझने में कठिनाई आती है। दूसरा वर्ग बीज गणित में रुचि नहीं रखता, तीसरा वर्ग अंकगणित के प्रश्न हल करते हुए गलतियाँ करता है। इन विशिष्ट दोषों के आधार पर छात्रों के वर्ग बना देने चाहिए और फिर प्रत्येक वर्ग को अतिरिक्त समय देकर उनके विशिष्ट दोषों का उपचार करके ज्यादा से ज्यादा अभ्यास करवाना चाहिए। सामूहिक उपचार की यह विधि श्रमसाध्य तो है, परंतु इसका लाभ काफी होता है क्योंकि इस विधि में छात्र भी एक-दूसरे की सहायता करते हैं।

2. **व्यक्तिगत विधि (Individual Method) :** व्यक्तिगत उपचार के लिए निम्नलिखित पद्धतियाँ अपनाई जानी चाहिए–

(i) व्यक्तिगत उपचार में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नता का ध्यान रखना चाहिए।
(ii) व्यक्तिगत अध्ययन करना चाहिए तथा उपचार गृह-पद्धति का सहारा लेना चाहिए।
(iii) उपचार करते समय परिस्थिति, मजबूरियों एवं वातावरण का ध्यान रखना चाहिए।
(iv) उपचार हेतु दंड आवश्यक नहीं है, प्रेम एवं सहानुभूति के साथ व्यक्तिगत उपचार करना चाहिए।
(v) कक्षा के छात्र अलग-अलग ढंग से गलतियाँ करते हैं, इसलिए उपचार भी अलग-अलग ढंग से किया जाना चाहिए।
(vi) सामूहिक उपचार व्यक्तिगत रूप से भी कराये जा सकते हैं, सामूहिक उपचार में संभव है व्यक्तिगत उपचार न हो सके। बिना व्यक्तिगत ध्यान दिए सच्चाई का पता लगाना कठिन हो जाता है।

सतत तथा व्यापक मूल्यांकन
(Continuous and Comprehensive Evaluation)

☛ **मूल्यांकन की सततता तथा व्यापकता पर टिप्पणी कीजिए।**

अथवा

☛ **सतत व व्यापक मूल्यांकन के बारे में लिखो।**

व्यापक मूल्यांकन
(Comprehensive Evaluation)

मूल्यांकन की व्यापकता की व्याख्या हम निम्नलिखित बातों द्वारा कर सकते हैं–

1. **उद्देश्यों एवं प्रयोजन के रूप में व्यापकता (Comprehensiveness in the form of Objectives and Purposes) :** मूल्यांकन उद्देश्यों एवं प्रयोजनों की पूर्ति के आधार पर परीक्षा, मापन तथा परीक्षण की अपेक्षा बहुत व्यापक होता है। विद्यार्थियों के माता-पिता, अध्यापक, प्रशासन वर्ग, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम तथा प्रश्न-पत्र के निर्माता इत्यादि को मूल्यांकन के परिणाम की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मूल्यांकन के परिणाम शिक्षण-अधिगम से जुड़े सभी व्यक्तियों का मार्गदर्शन करते हैं। इसी तरह मूल्यांकन के परिणाम द्वारा शिक्षण-अधिगम प्रणाली के शुरुआती चरण के उद्देश्य निर्धारण से लेकर आयोजन तथा प्रबंध तक उचित पृष्ठ-पोषण मिलने का उद्देश्य प्रमाणित होता है। इस प्रकार मूल्यांकन शैक्षिक व्यवस्था की प्रक्रिया, अदा तथा प्रदा तत्त्वों का उचित पृष्ठ-पोषण देते हैं, जिससे मूल्यांकन परिणाम उन्हें वांछित रूप प्रदान करने में व्यापक भूमिका निभाते हैं।

2. **साधनों और तकनीकों की दृष्टि से मूल्यांकन की व्यापकता (Comprehensive in Terms of Tools and Techniques) :** परीक्षण, मापन तथा परीक्षा के मूल्यांकन हेतु जो साधन एवं तकनीकें

अपनाई जाती हैं वे बहुत विस्तृत और व्यापक होती हैं। मूल्यांकन की जांच प्रक्रिया में किसी वस्तु की परिमाणात्मक व्याख्या के अतिरिक्त गुणात्मक व्याख्या जैसे—साक्षात्कार, अवलोकन, रेटिंग स्केल आदि का भी उपयोग किया जाता है। इस प्रकार तकनीकों एवं साधनों की दृष्टि से मूल्यांकन परीक्षा, मापन तथा परीक्षण आदि की अपेक्षा अधिक व्यापक और विस्तृत कहा जा सकता है।

3. **परिणामों के संदर्भ में मूल्यांकन की व्यापकता (Comprehensiveness in the Term of Output)** : मूल्यांकन प्रणाली में प्राप्त होने वाले परिणाम, परीक्षण, मापन व परीक्षा की तुलना में अधिक व्यापक तथा विस्तृत होते हैं। इस बात की पुष्टि निम्न बिंदुओं से लगाई जा सकती है—

- मूल्यांकन के परिणाम हमें परिमाणात्मक वितरण के अलावा परिणामों की उपलब्धि तथा निरर्थकता का भी निर्णय देते हैं। उदाहरणस्वरूप—यदि किसी विद्यार्थी ने सौ में से पैंसठ अंक प्राप्त किए हैं तो मूल्यांकन के परिणाम हमें परिमाणात्मक वितरण के अलावा ये भी बतायेंगे कि वह प्रथम श्रेणी में पास हुआ है। इस प्रकार मूल्यांकन के परिणाम मापन संबंधी सूचना के आधार पर उसकी सार्थकता तथा उच्चस्तरीयता के बारे में भी निर्णय देकर काफी व्यापक एवं विस्तृत बन जाते हैं।
- विद्यार्थी के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलुओं और व्यवहार के सभी पक्षों में होने वाले परिवर्तनों तथा विकास की मूल्यांकन के परिणामों द्वारा जांच की जा सकती है, जो मापन, परीक्षण तथा परीक्षाओं के द्वारा संभव नहीं है।
- मूल्यांकन की व्यापकता का पता इस बात से भी लगाया जा सकता है, क्योंकि ये न केवल विद्यार्थियों की कमजोरियों को ही ढूंढता है बल्कि उनके समाधान हेतु सुझाव भी प्रदान करता है। साथ-साथ निर्धारित किए गए शिक्षण अधिगम उद्देश्यों की उपयुक्तता के बारे में भी बताता है। अधिगम अनुभवों, पाठ्यक्रम, विधियों, तकनीकों, सामग्री इत्यादि की उपयुक्तता के बारे में भी बोध करवाता है।
- शिक्षण-अधिगम में शिक्षण एवं विद्यार्थियों की भागीदारी को भी ध्यान में रखता है एवं वह प्रक्रिया किस हद तक सफल रही, का ज्ञान भी करवाता है।

मूल्यांकन की सततता या निरंतरता (Continuity of Evaluation)

जहां मूल्यांकन अपनी व्यापकता और विस्तृतता के लिए जाना जाता है, वहीं उसकी दूसरी विशेषता उसकी सततता या निरंतरता होती है। निम्न बातों से उसकी इस विशेषता के विद्यमान होने की पुष्टि होती है—

(a) जिस तरह परीक्षा और परीक्षण में निश्चित समय दिया होता है, उस तरह से मूल्यांकन में समय की कोई निश्चित अवधि नहीं होती है। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, अर्धवार्षिक तथा वार्षिक अवधि में परीक्षा और परीक्षण लेने का रिवाज है। मूल्यांकन के लिए तो ऐसा कोई भी समय बंधन नहीं होता। मूल्यांकन प्रक्रिया के दौरान इस बात की पूरी स्वतंत्रता रहती है कि शिक्षण अधिगम के सम्पूर्ण सत्र के दौरान जिस समय भी चाहे शिक्षक छात्रों की निष्पत्ति की जांच कर सकता है।

(b) मूल्यांकन का उद्देश्य इस बात का मूल्य आंकना होता है कि छात्रों के व्यवहार में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जो बदलाव आते हैं, अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वे कितने और किस रूप में सही हो सकते हैं। इन परिवर्तनों का आना व्यवहार में अनवरत रूप से चलता ही रहता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि शिक्षण-अधिगम के किस मुकाम पर किस प्रकार के अधिगम अनुभवों या शिक्षण-अधिगम विधि और साधनों से किस प्रकार के परिवर्तन छात्रों के व्यवहार में आ जाएं। इस दृष्टि से छात्रों के व्यवहार की जांच और इन जांच परिणामों का मूल्य निर्धारण भी अनवरत रूप से चलते रहना चाहिए। छात्र को उचित दिशा में आगे बढ़ते रहने के लिए अपेक्षित

पुनर्बलन तभी मिलेगा जब उसके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आए तथा तब जबकि छात्र व शिक्षक को यह पता चले कि वह ठीक दिशा में सही तरीके से अधिगम पथ पर आगे बढ़ रहा है। इस तरह से स्व-प्रतिपुष्टि चाहे छात्र को मिले या शिक्षक को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की सफलता हेतु आवश्यक होती है। एक आदर्श मूल्यांकन में इस तरह की विशेषता का पाया जाना मूल्यांकन की प्रक्रिया को सतत या अनवरत रूप से लगातार चलाने में सहायक होता है।

☛ **निर्माणात्मक मूल्यांकन तथा संकलनात्मक मूल्यांकन का वर्णन कीजिए।**

उत्तर :

निर्माणात्मक मूल्यांकन
(Formative Evaluation)

निर्माणात्मक मूल्यांकन बच्चों के अधिगम को मापता है और ठीक समय पर आवश्यक प्रयास एवं शक्ति के लिए प्रेरित करता है। प्रत्येक इकाई के शिक्षण उपरान्त निर्माणात्मक परीक्षण किया जाता है। इसके द्वारा इकाई के पूरा होने से पहले आने वाली कठिनाइयों को पहचानने में मदद मिलती है। छात्र को जब किसी इकाई में निपुणता नहीं प्राप्त होती है तो निर्माणात्मक मूल्यांकन उनकी कठिनाइयों को दूर करने में मदद करते हैं। परिणामस्वरूप उन्हें इकाई में निपुणता प्राप्त करने में सुविधा रहती है। यह मूल्यांकन की एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समय तथा स्थिति के अनुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, निर्माणात्मक मूल्यांकन का मुख्य लक्ष्य पाठ्यक्रम में सुधार लाकर उसका विकास करना है।

निर्माणात्मक परीक्षण बनाने के लिए प्रयोग में आने वाले सोपान या पद
(Steps Involved in Formative Test Construction)

निपुणता अधिगम युक्ति में सभी इकाइयों पर निर्माणात्मक परीक्षण विकसित किया जाता है। जिसके लिए शिक्षक द्वारा एक या दो सप्ताह में पढ़ाई जाने वाली इकाइयों की विषय-वस्तु का चयन कर लिया जाता है। निर्माणात्मक परीक्षण के निम्न मुख्य सोपान हैं–

(1) **विषय-वस्तु का विश्लेषण :** इस मूल्यांकन विधि के इस सोपान के अन्तर्गत अधिगम इकाई के अवयवों को विषय-वस्तु में जोड़ा जाता है। नई विषय-वस्तु के नियमों, सिद्धान्तों, तथ्यों और विधियों को परिभाषित कर उनका उल्लेख करते हैं। शिक्षक नई विषय-वस्तु के तत्त्वों को पहचानकर एक सूची तैयार कर लेता है। एक अनुभवी शिक्षक नयी विषय-वस्तु का विश्लेषण करने के पश्चात् उसे अच्छी प्रकार से पहचानता हुआ परिभाषित करता है।

(2) **छात्रों के व्यवहारों की विशिष्टता :** शिक्षक द्वारा नयी विषय-वस्तु का विश्लेषण करने के पश्चात् निर्माणात्मक मूल्यांकन के दूसरे सोपान में नई विषय-वस्तु से सम्बन्धित छात्रों के व्यवहारों को समझा जाता है। शिक्षा को विषय-वस्तु के नये तत्त्वों के प्रकाश में छात्रों को क्या सिखाना है? उसे क्या और कितना याद करना है? उसे कौन-कौन सी विधियां अपनानी चाहिए? उसे क्या-क्या व्याख्या करना है? विषय वस्तु के सभी तत्त्वों को ज्ञानात्मक व्यवहारों के रूप में विश्लेषण करना होता है। ज्ञानात्मक व्यवहारों को ब्लूम के शिक्षण उद्देश्य के वर्गीकरण (ज्ञान, अवधि, अनुप्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण एवं मूल्यांकन) के द्वारा समझा एवं पहचाना जा सकता है।

(3) **विशिष्टताओं की सारणी बनाना :** छात्रों के व्यवहारों की विशिष्टताओं की सारणी तैयार करते समय उनके मुख्य व्यावसायिक स्तरों को प्रत्येक कालम के ऊपर रख देते हैं और इनके नीचे उचित विषय तत्त्वों की सूची रख दी जाती है। इन तत्त्वों के मध्य सम्बन्ध दर्शाने के लिए इनमें रेखाएं अंकित कर दी जाती हैं। एक तत्व एक स्तर से अधिक महत्त्वपूर्ण है, तो उसे दो दूसरे तत्त्वों के द्वारा अंकित कर दिखाया जाता है। इस प्रकार शिक्षक विशिष्टताओं की सारणी द्वारा विभिन्न तत्त्वों के परस्पर सम्बन्ध और उनके विकास एवं सुधार के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार की सारणी शिक्षकों के निर्माणात्मक परीक्षण में काफी सहायक

सिद्ध होती है। इससे शिक्षक को यह पता चलता है कि परीक्षण में किन-किन चीजों को लेना है और उनका परीक्षण पद में क्या सम्बन्ध है?

(4) महत्त्वपूर्ण तत्वों के पदों का वर्णन : निर्माणात्मक परीक्षण के अन्तर्गत तैयार की गई विशिष्टता सारणी में वर्णित सभी इकाइयों के विभिन्न महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के पदों का वर्णन होना चाहिए। सारणी में यदि चालीस मुख्य तत्व हैं, तो उन सभी को एक या इससे अधिक पदों में लाना चाहिए। इसमें विभिन्न व्यावहारिक स्तर के पदों को सम्मिलित करना चाहिए, क्योंकि परीक्षण में सभी व्यावहारिक स्तर के पदों का होना जरूरी है। पदों को पूछने के ढंग भी अलग-अलग हो सकते हैं। इस परीक्षण में रिक्त स्थान भरो, बहुविकल्प पद एवं मिलान पद आदि विभिन्न पदों को सम्मिलित किया जा सकता है।

निर्माणात्मक मूल्यांकन शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिए अत्यन्त लाभदायक है। यह विद्यार्थी के अधिगम के मूल्यांकन में भी काफी सहायक है। यह विद्यार्थियों को उचित समय पर ठीक दिशा में शक्ति लगाने के लिए प्रेरित करता है। विद्यार्थियों को किसी विशेष विषय-वस्तु में निपुणता देकर वह सार्थक प्रेरणा का काम करता है। विद्यार्थी द्वारा किसी विषय-वस्तु पर अच्छी प्रकार से निपुणता न प्राप्त करने की स्थिति में निर्माणात्मक मूल्यांकन उसकी विषय-वस्तु अधिगम के मार्ग में आने वाली बाधाओं से परिचित कराता है और शिक्षक विद्यार्थी को उसे सीखने के लिए पुनः मार्ग निर्देशन देता है। इसकी सहायता से शिक्षक आज के छात्रों के परिणामों की तुलना पहले के छात्रों के परिणामों से भी कर सकता है।

संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)

संकलनात्मक मूल्यांकन का सम्बन्ध पाठ्यक्रम के परिणाम को मापने से है। पाठ्यक्रम की रचना विशेष लक्ष्यों के मद्देनजर की जाती है। इन लक्ष्यों में शिक्षा द्वारा समाज का विकास तथा बच्चों की चहुँमुखी उन्नति की जाती है। संकलनात्मक मूल्यांकन का लक्ष्य बच्चों में पाठ्यक्रम में सुधार के परिणामस्वरूप उनके मूल्यांकन से उसमें सुधार करना है। इस प्रकार के मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य अधिगम इकाई के निपुणता स्तर को मालूम करना है और कमियों के बारे में बताना है जो एक बच्चे द्वारा निपुणता प्राप्त करते समय आती है। इसके अतिरिक्त संकलनात्मक मूल्यांकन बच्चों को उनके उद्देश्यों की उपलब्धि के अनुसार वर्गीकृत करता है। बच्चों में कैसे परिवर्तन होता है, यह इससे अधिक सम्बन्धित है। इसका मुख्य लाभ यह भी है कि परिवर्तन पूरा हो चुका है और शेष बची कमियों में सुधार किया जा सकता है।

संकलनात्मक मूल्यांकन के महत्त्वपूर्ण कार्यों को श्रेणी में बांटना, समूहों की उपलब्धियों की तुलना करके सुधार करना, कोर्सों की सफलता की प्रकथना एवं प्रमाणीकरण को सम्मिलित किया जा सकता है। संकलनात्मक मूल्यांकन की निपुणता अधिगम में बच्चों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करना है। शिक्षक को चाहिए कि वह सभी बच्चों की निपुणता स्तर को जानकर उनमें निपुणता विकसित करने के लिए यथासम्भव प्रयास करे। बच्चों द्वारा निपुणता को प्राप्त कर लेने पर शिक्षक को इसकी पहचान कर लेनी चाहिए। इसके लिए उसे ज्ञानात्मक विधि के अतिरिक्त पाठ्य-सामग्री के उद्देश्यों को जानना चाहिए। संकलनात्मक मूल्यांकन विधि का मुख्य कार्य इन उद्देश्यों को पूर्ण होने पर सभी बच्चों को क्रम से देना है।

निर्माणात्मक मूल्यांकन एवं संकलनात्मक मूल्यांकन दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं। जैसे-जैसे पाठ्यक्रम का विस्तार होता जाता है, वैसे-वैसे मूल्यांकन भी विस्तृत होता जाता है। पहले परम्परागत पाठ्यक्रम से तात्पर्य केवल कुछ विषयों के पढ़ने से लिया जाता था तथा मूल्यांकन भी उन्हीं विषयों तक सीमित था, लेकिन आजकल पाठ्यक्रम में शैक्षिक एवं गैरशैक्षिक विषयों का महत्त्व भी बढ़ गया है और इसी तरह मूल्यांकन का क्षेत्र भी व्यापक हो गया है। इसलिए निर्माणात्मक मूल्यांकन के बिना संकलनात्मक मूल्यांकन अधूरा है, क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं।

☛ मानदण्ड संदर्भित परीक्षण एवं मानक संदर्भित परीक्षणों में तुलना करो।

उत्तर :

मानदण्ड संदर्भित परीक्षण एवं मानक संदर्भित परीक्षणों में तुलना
(Comparison between Criterion Referenced Test and Norms Referenced Test)

मानदंड संदर्भित परीक्षण	मानक संदर्भित परीक्षण
1. ये परीक्षण पूर्व निर्धारित शिक्षण अधिगम उद्देश्यों पर आधारित होता है।	1. ये परीक्षण मानकों पर आधारित होता है।
2. इस परीक्षण द्वारा शैक्षिक पाठ्यक्रम के प्रभाव को मापा जाता है।	2. यह परीक्षण शैक्षिक उपलब्धि में व्यक्तिगत विभिन्नताओं के मापन हेतु प्रयोग में लाया जाता है।
3. इस परीक्षण में विद्यार्थियों की आपस में कोई प्रतियोगिता नहीं होती। वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करके स्वामित्व स्तर पर पहुँचने का प्रयास करता है।	3. इस परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों में अंधी प्रतियोगिता व ईर्ष्यालु स्वभाव का जन्म होता है जिससे विद्यार्थी मानसिक संतुलन खो सकते हैं।
4. ये परीक्षण प्राप्तांक के विचलन को अधिक करने में सहायक नहीं होता।	4. ये परीक्षण प्राप्तांक के विचलन को और अधिक करने में सहायक सिद्ध होता है।

मानदंड संदर्भित परीक्षण	मानक संदर्भित परीक्षण
5. इस परीक्षण में प्राप्त परिणाम किसी अन्य समूह के परिणामों के मानकों पर निर्भर नहीं होते।	5. इस परीक्षण से प्राप्त विद्यार्थी के परिणाम विद्यालय, कक्षा, प्रांत आदि समूह के प्राप्त अंकों पर निर्भर होते हैं। इसी मूल्यांकन से कक्षा, विद्यालय या प्रांत में उसका स्थान तय किया जाता है।
6. इस परीक्षण का उपयोग विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्य के संदर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक क्षमता के मापन के लिए किया जाता है।	6. इसका शिक्षा, पाठ्यक्रम में सुधार एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास से कोई संबंध नहीं है।
7. विद्यार्थियों की उपलब्धियों की तुलना स्वामित्व स्तर की उपलब्धियों से की जाती है।	7. इस परीक्षण द्वारा विद्यार्थी की उपलब्धियों को उसकी कक्षा या समूह विशेष के अन्य विद्यार्थियों से तुलना की जाती है।
8. इस प्रकार के परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों की आपसी तुलना कर अनुसंधानात्मक कार्य किए जाते हैं।	8. इस प्रकार के परीक्षण द्वारा विद्यार्थी विशेष को स्वामित्व स्तर पर पहुँचाने की कोशिश की जाती है।
9. यह परीक्षण प्राचीन काल से चली आ रही मापन परीक्षण प्रणाली को दर्शाता है।	9. इस परीक्षण द्वारा परीक्षण एवं मापन के क्षेत्र में एक नया अध्याय जुड़ा है।
10. इस प्रकार के परीक्षण में यह पहले से तय नहीं होता कि विद्यार्थियों से उनके निस्पत्ति स्तर में किस प्रकार की अपेक्षा की जाती है।	10. इस परीक्षण प्रक्रिया में यह पहले ही तय कर लिया जाता है कि विद्यार्थियों को उपलब्धियों के किस स्तर तक पहुँचना है।